योग सिद्धान्तों और शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

वर्ष 30 जून, 1997 अंक 3

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन, संवाई (आगरा) - 283 202

संस्थापक :
योग योगेश्वर अनन्त श्री
चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य ब्र० रामलाल शर्मा

संयुक्त सम्पादक :
श्री भुवनेन्द्र झा

प्रबन्ध सम्पादक :
श्री चन्द्रशेखर 'दिव्य'
❀
आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा
❀
श्री गोविन्द सोनी
❀
ब्र० राकेशचन्द्र शर्मा

जून 1997

इस अंक के लेख

❀ असार खलु संसारो 1
❀ अमृत कण 2
❀ सार्वभौम सिद्धयोग (विशेष लेख) 3
–योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज
❀ 'हे योगीराज' 5
–भोपालसिंह 'पौलस्त्य' (प्रधानाचार्य)
❀ योग साधना एवं सिद्धियाँ (सम्पादकीय) 6
❀ धारणा के द्वारा स्वास्थ्य लाभ 9
–आचार्य चन्द्रहास शर्मा
❀ किमस्ति योगः (कविता) 13
–द्वारिका प्रसाद शर्मा
❀ महामन्त्र द्वारा महापूजा 19
–डा० विजय सिंह
❀ क्रोधोऽपि देवस्य वरेण तुल्यः 22
पं० राजेन्द्र पाठक
❀ सिद्धयोग अपनाओ (कविता) 24
❀ गणेश तत्व की उपयोगिता 25
–आर० सी० ठाकुर
❀ मामेकं शरणम् व्रज 28
–पं० महेश बोहरे ज्योतिर्विद
❀ प्रभु के समीप दुःख की सत्ता नहीं 29
–ब्र० रामानन्द सरकार
❀ श्री गुरुदेव जी की कृपापात्रा –
श्रीमती सुशीलादेवी 32
–श्री राजेश कुमार श्रीवास्तव (राजू)

वार्षिक शुल्क 65/- रु० । एक प्रति 6/ रु०
द्विवार्षिक शुल्क 120/- रु० । आजीवन शुल्क 651/- रु०

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षणकेन्द्र संवाई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 30 अंक 3 — जून 1997

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
मर्त्यो मृत्योर्मुख विवरतो, मुक्ति माप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विषदान् योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

असारः खलु संसारो

असारः खलु संसारो दुखःरूपी विमोहकः।
सुतः कस्य धनं कस्य स्नेहवाञ्ज्वलतेऽनिशम्।।
न चेन्द्रस्य सुखं किंचिन्त सुखं चक्रवर्तिनः।
सुखमस्ति विरक्तस्य मुनिरेकान्तजीविनः।।

अर्थात्

यह संसार असार है। यह अत्यन्त दुखःरूप और मोह में डालने वाला है। पुत्र किसका ? धन किसका ? स्नेहवान पुरूष रात-दिन दीपक के समान जलता रहता है। इन्द्र को और चक्रवर्ती राजा को कुछ भी सुख नहीं है। सुख है तो केवल एकान्तजीवी विरक्त मुनि को।

अमृत कण

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकम्
नेमा विद्युतो भाति कुतोऽयमग्निः
तमेव भान्तुमनु भाति सर्वम्
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति

(श्वेताश्वतर)

वहाँ (सद् गुरु तत्व) न सूर्य-प्रकाशित होता है। न चन्द्रमा और तारे प्रकाशित होते हैं। न बिजली चमकती है। फिर अग्नि ही कैसे प्रकाशित हो सकती है। ये सब आत्मा के प्रकाशित होने पर ही प्रकाशमान हो रहे हैं। उसी के प्रकाश से सब प्रकाशित है।

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्व भूतानि चात्मनि
ईक्षते योग युक्तात्मा सर्वत्र सम दर्शनः।

(गीता)

सर्वत्र समदर्शन वाला योगयुक्त योगी सब भूतों में अपने को तथा अपने में सब भूतों की अवस्थित देखता है।

विशेष लेख

सार्वभौम विद्यायोग

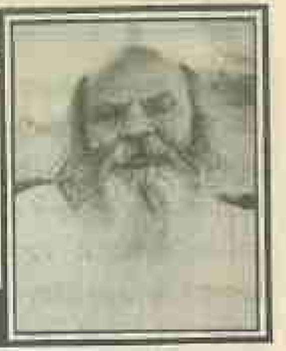

योग योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

योग आध्यात्म विद्या है, मानव मात्र इसका अधिकारी है। यह एक दूसरी बात है कि कोई व्यक्ति योग की परिभाषा न समझकर इसको अपने मन में साम्प्रदायिकता का स्थान देता रहे। साम्प्रदायिक लोग **मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना** के नियमानुसार अपने मनोनीत नियमों का संकलन करके अपने सम्प्रदायों को चलाते हैं। उनके सभी नियम सभी को प्रिय नहीं होते। हमारी योग विद्या एक इस प्रकार की योग विद्या है। जिससे ज्ञान और विज्ञान क स्वरूपों को समझाकर मनुष्यों को पूर्णता की ओर ले जाया गया है । भगवान पतञ्जलि देव ने **योगश्चित्त वृत्ति निरोधः** कह करके अपने पातञ्जलि योग दर्शन में योग की परिभाषा बताई है। चित्तवृत्ति योग का अर्थ है- चित्त की वृत्तियों का नितरां रोध । अर्थात सीमा तक पहुँची हुयी चित्त वृत्तियों का बिल्कुल-बिल्कुल रुक जाना। चित्त वृत्तियाँ त्रिगुणात्मक होती हैं। सतोगुण,रजोगुण, तमोगुण ये तीनों प्रकृति संभव गुण हैं। ये तीनों गुण ही योगी के चित्त को मलिन रखा करते हैं। जिस समय चित्त सतोगुण प्रधान रहता है उस समय रजोगुण और तमोगुण उसके अनुगामी रहा करते हैं। ऐसा सतोगुण प्रधान चित्त आत्म स्वरूप अध्यात्म ऐश्वर्य में प्रेम करने वाला होता है और इसके विपरीत रज और तम प्रधान चित्त अवैराग्य अनैश्वर्य एवं अंधकार आलस्य की ओर बढ़ाने वाला होता है। योगी अपने चित्त की त्रिगुण प्रवृत्तियों को हटाकर चित्त वृत्तियों का निरोध करता है एवं अपने आप को कैवल भाव की ओर ले जाता है। कैवल्य लाभ करना ही योगियों का परम लक्ष्य है।यह लक्ष्य भूमण्डल पर जन्म लेने वाले हर मानव का हो सकता है। उसका किसी के मजहब या सम्प्रदाय से कोई सम्बन्ध नहीं । आवश्यकता तो इसी बात की है कि साधक मननशील मनुष्य हो । यह विचारने की आवश्यकता नहीं कि उसका जन्म कहाँ हुआ है? वह किन मन्तव्यों के मानने वाले हैं। भले ही वह यहूदी हो, फारसी हो, हिन्दू -मुसलमान या ईसाई हो। आवश्यकता इस बात की है कि वह मननशील मानव हो। मननशील मानव योग का अधिकारी है। यदि उसके मन में योग की सच्ची जिज्ञासा पैदा हो गई है तो वह योगोपदेष्टा योग्य सच्चे आचार्य गुरु की शरण लेकर इस विद्या में प्रवेश कर सकता है तथा प्रवेश कर जाने के बाद दृढ़तर अभ्यास में लगे रहने वाला व्यक्ति योग की पराकाष्ठा को अवश्य ही पा जाता है। अखिलात्मा योग योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण ने श्रीमद् भगवद् गीता के छठे अध्याय में युक्त योगी का लक्षण इस प्रकार बतलाया है-

ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा, कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी, समलोष्टाश्मकांचनः।।

अर्थात युक्त योगी कहलाता ही वही है जो ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा होकर विकार रहित स्थिति को पहुँच गया हो। जिसकी दृष्टि में लोहा, सोना, मिट्टी, पत्थर समान रूप से ही दिखाई देते हों। किन्तु यह स्थिति प्राप्त उसी को हो सकती है जिसने योग का क्रमशः अध्ययन किया हो। योग की वर्णाक्षरी मन की एकाग्रता से आरम्भ होती है। मन

सब शक्तियों का भण्डार है। इन्द्रियाँ उसको अपने विभिन्न विषयों में प्रतिक्षण प्रेरित करती रहती है। अतः वह इन्द्रियों के विषय रूप-रस-गंध आदि में भटकता रहता है। योगी का सबसे पहला लक्ष्य है कि रूप-रस-गंधादि में भटकने वाले अपने मन को प्रत्याहार के द्वारा लौटा लौटा कर धारणा के द्वारा एकाग्र करें। किसी एक लक्ष्य स्थान में चित्त को इकट्ठा करना ही धारणा कहलाती है, जिसका अध्ययन करने वाला साधक धारणा ध्यान समाधि का अध्ययन करता हुआ संयम तक पहुँच जाता है एवं संयमित चित्त वाला योगी ही ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा के अर्थ को हर व्यक्ति संभवतः नहीं समझता होगा। अतः थोड़ा सा स्पष्ट कर देना आवश्यक है। ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा का अर्थ है प्रकृति के सारे विश्लेषणों को समझकर उस पर पूर्णाधिकार प्राप्त करना। जैसे जल में न डूबना, अग्नि से न जलाया जाना , पाताल प्रवेश करना ,आकाश गमन करना,। ये सभी कार्य प्रकृति के नियमों को समझकर उस पर विजय प्राप्त कर लेने वाली बात है। जो साधक अपनी साधना के बल से पकृति के इस प्रकार के सभी नियमों को समझकर उन पर अधिकार प्राप्त कर लेता है वह ज्ञान तृप्तात्मा कहलाता है। इसी प्रकार जो व्यक्ति अपने संयम को उत्कृष्ट बढ़ाकर आत्म साक्षात्कार कर लेता है एवं प्रातिभश्रवण वेदना आदर्श आदि आदि सिद्धियों को प्राप्त करता है वह विज्ञान तृप्तात्मा कहलाता है। ज्यों-ज्यों साधक आत्मसाक्षात्कार के निकट पहुँचता है त्यों-त्यों उसके मन में अपने आप ही प्रातिभज्ञान का उदय हो जाया करता है। जिस प्रकार से प्रातःकालीन ऊषाकाल में हर व्यक्ति को धुँधले-धुँधले प्रकाश में सब मकान आदि दिखलाई देने लगते हैं इसी प्रकार से योगी की बुद्धि में सभी सूक्ष्म भाव शुद्ध सत्व के रूप में आभासित होने लग जाते हैं। यही उसका प्रातिभज्ञान है। प्रातिभज्ञान के साथ-साथ दूर-दूर की वस्तुओं का स्पर्श करना आदि-आदि शक्तियाँ भी योगी के अन्दर स्वाभाविक रूप से उदित हो जाने के बाद योगी का मन अपने आप ही आत्मलीन रहने लगता है। वह कूटस्थ हो जाता है। उसकी बुद्धि वृत्ति आत्माकार बनी रहने लगती है। अतः किसी भी विकार का उसके मन में उदय नहीं होता। इस प्रकार की स्थिति में स्थित रहने वाले योगी की दृष्टि में लोहा, सोना, पत्थर सब समभाव से रहने लगते हैं। वह वासना तृष्णा के जाल से बिल्कुल-बिल्कुल दूर हो जाता है। प्राणीमात्र को अपनी आत्मा समझता है एवं अपने आपको भी प्राणीमात्र के अन्दर आत्मत्वेन देखता है। यही उसकी पराकाष्ठा को प्राप्त हुयी योग स्थिति है। उसकी दृष्टि में वर्ण भेद और जाति भेद सब मिट जाते हैं। अतः योग विद्या ही एक इस प्रकार की विद्या है कि जिसको सार्वभौम विद्या कहा जा सकता है क्योंकि पृथ्वी पर जन्म लेने वाले सभी व्यक्ति अपने अपने अधिकार भेद से उसके अधिकारी हैं। हमारे पूर्वज महापुरुषों ने अधिकार भेद को अवश्य माना है। अधिकार भेद का अर्थ किसी जाति-पाति से सम्बन्ध नहीं रखता प्रत्युत योग्यता से सम्बन्ध रखता है। जैसे पहली कक्षा में पढ़ने वाला विद्यार्थी उसे उत्तीर्ण करके ही दूसरी कक्षा का अधिकारी बनता है। न कि एम. ए. आचार्य आदि का। हाँ शनैः शनैः वह एम. ए.व आचार्य पद तक पहुँच ही जायेगा और कुछ समय के बाद क्रमशः अध्ययन करता हुआ अपने परम लक्ष्य तक अवश्य पहुँच जायेगा। किन्तु यह देखना आवश्यक होगा कि कौन व्यक्ति किस भूमिका का है। हठ योग, राजयोग, मंत्रयोग, एवं लययोग किस रास्ते पर चलने से किसका जल्दी से जल्दी ऊँचा उत्थान हो सकता है। इस बात को उसके शिक्षक समझेंगे कि वह अपने छात्र को जिस मार्ग से चलाना चाहेंगे चलायेंगे एवं उसको बढ़ायेंगे। यह विद्या सभी को सामान्य रूप से प्राप्त करने योग्य है। योग विद्या ही एक इस प्रकार की विद्या है जिसको जान लेने पर सब कुछ जाना जा सकता है। इसको पाकर ही मनुष्य कृत-कृत्य हो जाया करता है। यह विद्या हमारे पूर्वजों की अमर देन है।

●●●

स्तवन

हे योगीराज!

योगीराज आज हम तेरे ही धरम काज,
होके 'राममोहन' राज , राज- योगी हो जायेंगे।

दया दिल लायेंगे और जीव न सतायेंगे हम,
दूर कर देंगे हम रोग दुःख जहाँ पायेंगे।
करके प्रचार योग त्याग से संवार भोग,
जल में कमल सम भोगी कहलायेंगे।।

सिद्ध होंगे महाराज छोड़ेगें न लोकलाज,
कर्मयोग साधु सिद्ध योगी कहलायेंगे।
सत्यव्रत धार मन योग से निखार तन,
मन की गुफा में क्षण ध्यान बितायेंगे।।

ज्ञान की जला के ज्योति प्रीति के पढ़ा के पौथि,
ज्योति में मिलाके ज्योति, ईश हो जायेंगे।
होके निरोध वृत्त पायेंगे समाधि योग,
दुनियाँ में आयेंगे तो कर्मयोग लायेंगे।।

कर्म फल त्याग के अमर पद पायेंगे जो,
दनियाँ से जायेंगे तो फिर नहीं आयेंगे।

उपन्यासकार-
भोपाल सिंह शर्मा 'पौलस्त्य
प्रधानाचार्य, लाला लाजपत राय इण्टर कॉलेज
थाना भवन (मुजफ्फरनगर)

सम्पादकीय

योग साधना एवं सिद्धियाँ

योग साधना में सिद्धि शब्द अत्यन्त व्यापक है। इसकी व्यापकता के कारण ही विभिन्न रूचि एवं मत वाले व्यक्तियों के अनुसार इसके अर्थ में भी भिन्नता आ जाती है। वैसे तो सिद्धि शब्द का शाब्दिक अर्थ है किसी कार्य की पूर्णता को पा लेना । मनुष्य की असंख्य कामनायें हैं और उनकी पूर्ति के लिये ही वह अहर्निश लगा रहता है। इच्छाओं की पूर्णता के लिये वह अनेक प्रकार के वैदिक अनुष्ठान करता है व्रत एवं उपासनाओं में लगा रहता है। तान्त्रिक अनुष्ठानों का अवलम्ब लेता है। अपने पुरुषार्थ संयम एवं महापुरुषों की कृपा के अनुपात से उसे सिद्धि भी मिला करती है। यहाँ पर हम अन्य सिद्धियों की बात न कहकर केवल योग साधना से प्राप्तव्या सिद्धियों पर ही चर्चा करेंगे।

योग शास्त्र में सिद्धि शब्द के पर्याय के रूप में विभूति,ऐश्वर्य, आत्मबल, मानसिक शक्ति आदि-आदि शब्दों का प्रयोग देखा जाता है। योग में जो सिद्धियाँ आती हैं उन सब का आधार पूर्णतया मन की एकाग्रता ही है। वैदिक वाङमय एवं पुराणों में यह बात प्रसिद्ध है कि ईश्वर अपने संकल्प से ही सृष्टि की रचना करते हैं। इस बात से यह सिद्धान्त प्रमाणित हो जाता है कि उस परम चेतना अंशी का अंशरूप मानव में भी यह सामर्थ्य विद्यमान है। योगियों ने इसी सिद्धान्त को समझकर ही मानव मन को समस्त शक्तियों का केन्द्र माना है। जावों के मानस शक्ति के विभिन्नता के कारण ही विभिन्न शरीर एवं लोकों का निर्माण हुआ है। शरीरों से ही मानसिक शक्ति की अभिव्यक्ति हुआ करती है।

असंख्य ब्रह्माण्ड एवं अनन्त लोक हैं। इनमें रहने वाले जीवों की क्षमता, व्यवहार एवं जीवन दूसरे लोक के जीवों से भिन्न है।किन्तु हमारे इस पृथ्वी लोक की एक विशेषता यह है कि इसमें सभी लोकों के जीवके सदृश गुण, स्वभाव एवं शक्ति वाले मानव रहा करते हैं। हमारे पूज्यपाद गुरुदेव महाराज कहा करते थे कि पृथ्वी लोक परचून की दुकान की तरह है यहां थोड़ी थोड़ी वे सभी वस्तुएं मिल जाती हैं जिनके लिये एक एक अलग लोक की व्यवस्था बनी हुई है। दूसरे सामान्य शब्दों में कहा जाये तो कह सकते हैं कि यहाँ पर स्वर्ग, नरक आदि समस्त लोक विद्यमान हैं। इसी कारण से हमारे इस मर्त्य लोक में कीट पतंगें जैसे सामान्य जीव से लेकर सर्वसमर्थ योगी एवं अवतार वास किया करते हैं। वस्तुतः सृष्टि वैचित्र्य ही ईश्वर का सबसे बड़ा चमत्कार है। मानव जीवन भी इसी चमत्कार का एक अभिन्न अंग है। हम लोग अपने जीवन से इतने आत्मसात् हो चुके होते हैं कि हमें अपना जीवन आश्चर्यजनक नहीं लगता। यदि सामान्य मनुष्य को सशरीर पृथ्वी से इतर उच्च लोकों में ले जाया जायें तो वहाँ रहने वाले जीवों के शरीर, जीवन एवं सामर्थ्य-ऐश्वर्य को देखकर वह बहुत आश्चर्य में पड़ जायेगा। इसी तरह से मनुष्य लोक में ही यदि चींटी जैसे क्षुद्र जीव को मनुष्य जीवन के वैभव व क्षमता का ज्ञान हो जाये तो उसके लिये यह बहुत ही आश्चर्य की बात होगी।

सृष्टि वैचित्र्य का एक मूल कारण चेतना के विकास की भिन्नता ही है। जीवों के ज्ञान एवं क्षमता के आधार पर ही उनकी संकल्प शक्ति में भी अन्तर आ जाता है। एक कीट से लेकर ब्रह्म पर्यन्त आत्मत्वेन एक होने पर भी चेतना भेद से उनको मनस्तर एवं अन्तःकरण में अन्तर है। हमारे मानव जगत में भी सबकी शारीरिक संरचना एक जैसी होने पर भी व्यक्तियों के चिन्तन शक्ति मानसिक क्षमता एवं संकल्प शक्ति में अन्तर रहता है। नारकीय लोकों से आये हुये प्राणी मानव रूप में होते हुये भी अत्यन्त कटु भाषी अविनीत, दुष्टों का संग वाले तथा पर

पीड़ा में प्रसन्न रहने वाले एवं अनात्म वस्तुओं से प्रीति करने वाले होते हैं। ऐसे व्यक्तियों की संकल्प शक्ति फलवती नहीं हुआ करती है।इसके विपरीत जो उच्च स्तर के सात्विक लोकों से आये हुये देवता तथा पूर्वजन्म के योगाभ्यासी भी मनुष्य के रूप मे होते हैं। किन्तु उनकी मानसिक क्षमता एवं संकल्प शक्ति साधारण मनुष्य से उच्चस्तरीय होती है। स्वर्गादि लोकों मे रहने वाले देवताओं का सारा कार्य संकल्प से ही चलता है। इच्छा मात्र से सांसारिक भोग एवं विषयों को प्राप्त कर लिया करते हैं। किन्तु मर्त्यलोक में मानव को पुण्य एवं पुरुषार्थ से ही भोगों की प्राप्ति हुआ करती है। यह तो रही देवताओं की बात किन्तु उसमें यह सामर्थ्य प्रायः तभी तक होती है जब तक वे उस लोक में निवास करते हैं अथवा उस देवयोनि में रह रहे हैं। उस शरीर अथवा लोक के छूट जाने पर उस सामर्थ्य का सब मे बना रहना आवश्यक नहीं । योगियों के सामर्थ्य एवं संकल्प शक्ति की कोई सीमा नहीं। योगी मनुष्य लोक में रहता हुआ भी देवताओं की श्रेणी से बहुत आगे होता है। सम्पूर्ण प्रकृति पर योगी का अधिकार होने के कारण अपनी इच्छा मात्र से सृष्टि निर्माण-संहार आदि मे सक्षम होता है। विश्वामित्र ऋषि ने अपने तप एवं संकल्प के बल से नव सृष्टि का निर्माण किया यह सर्वविदित है। योग दर्शन के विभूति पाद में योगी के योगैश्वर्य का विस्तार से वर्णन किया गया है।

योग साधना का अधिकारी मनुष्य मात्र है और इस साधना का उद्देश्य है जड़ एवं चेतन के सम्पूर्ण भेद का पूरा पूरा ज्ञान प्राप्त कर अपने को मुक्त व स्वच्छ बना लेना। मानव योगी बनने की इच्छा करता है। अपने प्राक्तन संस्कार, संसर्ग व वातावरण के भेद से मुमुक्षु साधकों की इच्छायें अनेकधा बँटी हुई होती है। कोई कोई संस्कार वशात् सीधे आत्मतत्व की पकड़ में ही लगा रहता है उसे ही अपनी साधना का मुख्य लक्ष्य व केन्द्र बिन्दु मानता है। ऐसे साधक, **मनुष्याणां** सहस्त्रेषु कश्चिद् यतति सिद्धये' के अनुसार बहुत कम होते हैं। दूसरी श्रेणी के साधक वे होते है जो मुमुक्षु तो अवश्य होते हैं। किन्तु संस्कारों की दुर्बलता से अथवा कामनाओं के वशीभूत हो जाने पर साधना जन्य अलौकिक लाभ के फलश्रुति से अभिभूत होकर आत्म दर्शन के प्रधान कर्म को गौण बना लेते हैं और सिद्धियों की प्राप्ति मान ऐश्वर्य वैभव आदि को सर्वाधिक महत्व देकर उसे मुख्य कार्य समझ कर कर्म में प्रवृत्त होते हैं। ऐसे व्यक्तियों का उद्देश्य समाज में अपनी शक्ति, ऐश्वर्य एवं कीर्ति को प्रकाशित करना मात्र रह जाता है। ऐसे साधक मन की एकाग्रता को पाने वाले होकर योग भ्रष्ट कहलाते हैं पुनः शरीर ग्रहण कर साधना में प्रवृत्त होते हैं ऐसे साधनों में एकाग्रजन्य पुण्य के प्रभाव से विशिष्ट मानसिक शक्तियां जन्मजात होती हैं। पुनः **'लभते च पौर्वदेहिकम्'** इस भगवद् वचन के अनुसार पूर्वजन्म की सारी यौगिक कमाई उसे मिल जाती है। पुनः योग की भूमिकाओं की प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील हो जाता है।

गीता में भगवान ने मनुष्यों की रुचि एवं संस्कार के अनुसार ही उनकी साधना भेद का वर्णन किया है। शुद्ध सात्विक संस्कार वाले लोग देवताओं का भजन पूजन करते हे और फलस्वरूप इन्ही के लोकों में जाते हैं। पितरों को पूजने वाले पितर लोक को तथा भूत पिशाच की उपासना करने वाले देहपात के बाद उन्हीं योनियों को प्राप्त होते हैं। भगवान के भक्त योगी भगवान को ही प्राप्त करते हैं। मनुष्य जिस जिस श्रेणी के उपास्य की उपासना करता है तज्जन्य संस्कारों से भावित होकर **'यं यं वापि स्मरन्भावम्'** के अनुसार उन्हीं के समुदाय अथवा लोकों को प्राप्त होता है। भूत-पिशाच आदि के शरीर पृथ्वी तत्व एवं जल तत्व रहित होने के कारण उनका शरीर सूक्ष्म है, अतः साधारण मानव जिन कार्यों को नहीं कर सकता वे सहज में ही कर दिखाते हैं। मनुष्यों में कुछ लोग उनकी उपासना करके चमत्कारी महात्मा कहलाये जाते हैं किन्तु अन्ततोगत्वा उनका अधः पतन ही होता है।

—क्रमशः

धारणा के द्वारा स्वास्थ्यलाभ

आचार्य चन्द्रहास शर्मा

अध्यक्ष आधुनिक ज्ञान विज्ञान संकाय

हमारा चित्त नाना प्रकार की वृत्तियों के उदय और अस्त होते रहनें के कारण पारे की तरह चंचल बना रहता है। वृत्तियों का उत्थान-पतन संस्कारों के वेग से होता है। संस्कार को पवन गतिशील बनाता है। यदि प्राणवायु को रोक दिया जाय तो मन भी रुक जाता है। मन के बंधने से चित्त भी निस्तरंग हो जाता है। मन को एकाग्र करने के लिये अन्तरंग योग की साधना आवश्यक है। अन्तरंग योग में प्रत्याहार से प्रारम्भ कर धारणा-ध्यान और समाधि पर्यन्त योग की भूमिकाओं का अभ्यास करना होगा। इन सब में धारणा मन को बाँधने की आधारभुत साधना है। धारणा के विषय में महर्षि पतंजलि कहते है-**धारणासु योग्यता मनसः**-अर्थात धारणा से मन में शक्ति का संचय होता है जिससे साधक अद्भुत कार्य करने की साम्थर्य प्राप्त करता है। जैसे आतिशी शीशे को एक विशेष कोण से सूर्य के सम्मुख रखने से सूर्य की किरणें एक विन्दु पर केन्द्रित होकर रुई को जला देती हैं। उसी प्रकार मन को किसी एक लक्ष्य पर केन्द्रित करने पर उसमें अद्भुत सामर्थ्य का विकास हो जाता है।

धारणा दो प्रकार की होती है। बाह्य तथा-आभ्यन्तर। बाह्य में किसी बिन्दु, वस्तु, चित्र या शब्द पर मन को सब ओर से समेट कर एक लक्ष्य करना पड़ता है। आभ्यन्तर में लक्ष्य बाहर न होकर नाभिचक्र, हृदय कमल, नासिका के अग्र भाग या भ्रूमध्य, तालुमूल, अथवा ब्रह्मरन्ध्र में कल्पना के सहारे किसी रंग, ज्योति, आकृति, ध्वनि या बीज मंत्र की सहायता से मन को टिकाना पड़ता है। महर्षि पतंजलि ने **'देशबन्धश्चित्तस्य धारणा'** इस धारणा की परिभाषा से चित्त को शरीर के या किसी चित्र के स्थान विशेष पर ठहराने को धारणा का लक्षण माना जाता है। जैसे पारा बहुत चंचल होता है किन्तु मुर्च्छित तथा विविध संस्कारों से बाँधने पर ठोस या भस्म रूप में बनकर रस बन जाता है। जिसके प्रयोग से जरा-व्याधि से रक्षा होती है और उसके प्रयोग से आकाश-गमन आदि की सिद्धियाँ भी होती हैं। इसी प्रकार मन मूर्च्छित होने पर चेति शक्ति का संयोग पाकर संकल्प बल से भरपूर हो जाता है जिससे अणमादि नाना प्रकार की सिद्धियाँ अद्भुत होती हैं।

धारणा विषयक साधना प्रक्रिया– धारणा की साधना का आरम्भ करने के लिये साधक को अपनी इन्द्रियों पर संयम होना चाहिये। जितेन्द्रिय साधक ही योगसिद्धि लाभ करपाता है। अन्यथा छिद्रों में से साधना से प्राप्त बल रिसता रहता है। जितेन्द्रियत्व के साथ-साथ प्राण संयम भी आवश्यक है। विविध प्रकार के-प्राणायाम के अभ्यास से प्राण संयम होता है। जब साधक में ये दो योग्यतायें हो जायें तब मुक्तासन, पद्मासन, सुखासन, स्वस्तिकासन या सिद्धासन पर बैठकर समकाय

शिरोग्रीव होकर पवित्र स्थान में (श्री गुरुदेव के निवास स्थल, नदी तट या देवालय, गोशालादि) शान्तचित्त बैठकर अर्धनिमीलित नेत्रों से एकान्त में बैठ प्रणव मंत्र का जाप करते हुए समस्त लोक, काल, वस्तु तथा देवों में ऊँकार की ज्योति की व्यापकता का अनुभव करें । बाहर भीतर सर्वत्र ऊँकार ध्वनि और ज्याति का अनुभव करते हुए इस प्रकार के जप का परिणाम यह होगा कि प्राण कुम्भकवृत्ति में आ जायेगें । प्राण वायु के निश्चल होने से भी मन निश्चल हो जायगा, क्योंकि शास्त्रीय सिद्धान्त है– **'स्थिरे वाते स्थिरं मनः'** अर्थात प्राणवायु के स्थिर होने पर मन भी स्थिर हो जाया करता है। मन के स्थिर होने पर जीव और चित्त भी स्थिर हो जाता है। जब तक भ्रूमध्य में मन और चित्त रहता है तब तक काल का भी भय नहीं रहता। अतः साधक को गहन साधना में पहुँचने के लिये पहले इतनी तैयारी अवश्य कर लेनी चाहिये अन्यथा आगे चलकर अनेक प्रकार के विघ्न उपस्थित हो जाते है।

हमारे शरीर में 36 अंगुल तक प्राण शक्ति संचरित होती है। उसे शनैः-शनैः अभ्यास से सूक्ष्म करते- करते दो अंगुल तक ले आयें। तब ध ारणा का अभ्यास ठीक-ठीक हो सकेगा। प्रारम्भिक अवस्था में रेचक पूरक-कुम्भक का अभ्यास आवश्यक है । पद्मासन में सीधे बैठकर बायीं नासिका से सोलह मात्रा में श्वाँस द्वारा पूरक करें। भरी हुई श्वाँस को बारह मात्रा तक रोक कर कुम्भक करें । फिर दायीं नासिका से दस मात्रा में प्राणवायु को निकाल कर रेचक करें। दुबारा सूर्य नाड़ी (दायाँ नासापुर) से पूर्ववत् पूरक एवं कुम्भक कर बायीं नासिका से रेचक करें। इस प्रकार कुछ दिन अभ्यास पक्का हो जाने पर इस क्रम से दुगनी मात्रा का अभ्यास करें। दुगनी मात्रा का अभ्यास कुछ दिनों में सिद्ध हो जाने पर तिगुनी मात्रा का अभ्यास करें। इस प्रकार **अधम, मध्यम और उत्तम**-ये तीन प्रकार के प्राणयाम हुए। उत्तम प्राणायाम 48-36-30 मात्रा का हुआ। नियम से तीन महीने तक यदि कोई साधक इस प्रकार प्राणायाम का अभ्यास कर ले तो उसकी नाड़ी-शुद्धि हो जायेगी। नाड़ी-शुद्धि के फल स्वरूप जठरानल प्रदीप्त हो जायगी तथा अन्दर अनेक प्रकार के नाद सुनायी पड़ने लगेंगे। शरीर के समस्त रोग विदा हो जायेंगे, इस प्रकार के प्राणायाम के साथ धारणा का अभ्यास भी आवश्यक है। आसन के बन्ध, मुद्रा तथा प्राणायाम के साथ यदि धारणा का सहयोग नहीं होगा तो मानसिक शक्ति प्राप्त नहीं होगी। मनोबल एवं संकल्प-शक्ति के लिए धारणा आवश्यक है। इस प्रकार के प्राणायाम में चन्द्र और सूर्य के बीजाक्षर (ह:ठः) के साथ धारणा करते हुए पूरक एवं कुम्भक करने से पूर्ण लाभ होता है। चन्द्र नाड़ी(बायीं नासिका) से पूरक करते हुए–चन्द्र बीजाक्षर का उच्चारण करते हुए या चन्द्रमण्डल की कल्पना करते हुए ऐसी भावना करें कि चारों ओर अमृत का सागर लहरा रहा है। क्षीर (दूध) के रंग के अमृत सागर का ध्यान करते हुए पूरक करने पर शरीर के रक्तकण अमृत तत्त्व से भर जाते हैं। इसी प्रकार दायीं नासिका से पूरक करते समय सूर्य के बीजाक्षर की मानसिक कल्पना करते हुए प्राणवायु धीरे-धीरे इस प्रकार अन्दर भरनी चाहिये जिस प्रकार छोटी नली को मुँह में लगा कर केम्पाकोला पिया करते हैं। सूर्य

नाड़ी से पूरक करते समय नाभिकेन्द्र पर मन को -एकाग्र करते हुए जलती हुई अग्नि शिखा का ध्यान करते रहना चाहिए। इस प्रकार के अभ्यास से तीन महीनें में नाड़ी शुद्धि हो जायेगी। शास्त्रीय नियमहै- **'प्राणायामैर्दहेद्दोषान् धारणाभिश्चकिल्बिषम्'** अर्थात प्राणायाम के अभ्यास से दसों इन्द्रियों के समस्त दोष उसी प्रकार दूर हो जाते हैं जिस प्रकार धातुओं के मल अग्नि से दूर हो जाते हैं। धारणाओं के अभ्यास से मन बुद्धि चित्त अहंकार (अन्तःकरण) के समस्त दोष जिन्हें पाप कहा जाता है-वे सब दूर हो जाया करते हैं। जब साधक तन मन से शुद्ध हो जाता है तब धारणा की परिपक्वावस्था अर्थात् ध्यान में आरूढ़ हो पाता है। ध्यान में शुद्ध मन शुद्ध स्वरूप परमात्मा के साथ एकाकार होने में फिर देर नहीं लगती। ध्यान जब गाढ़ा हो जाता है तो वह समाधि में पर्यवसित हो जाता है। समाधि में विशुद्ध अन्तःकरण और सच्चिदानन्द परमात्मा एक रूप हो जाया करतें है। जैसे आग में पड़ी हुई लकड़ी आग रूप हो जाती है।

प्राणायाम के अभ्यासी साधक को घी-दूध का भोजन करना चाहिए। अभ्यास करने पर प्रथम पसीना आता है। उस पसीने को पोंछना नहीं चाहिए, बल्कि शरीर पर मालिश कर सुखा लेना चाहिए। इससे शरीर पुष्ट होता रहता है। कुछ समय बाद शरीर में कम्पन होने लगता है। इस अवस्था में घबराना नहीं चाहिए। शनैः-शनैः उत्तम प्राणायाम का अभ्यास कर लेने पर साधना निरापद हो जाती है। उत्तम प्राणायाम के साधना में बद्धपद्मासन में स्थित होने पर साधक का आसन जमीन से ऊपर उठनें लगता है या मेढक की तरह उछलने लगता है। बारह प्राणायाम सिद्ध हो जाने पर प्रत्याहार हो जाता है। बारह प्रत्याहार से धारणा सिद्ध होती है। बारह धारणा से ध्यान सिद्ध होता है। बारह ध्यान से समाधि सिद्ध होती है।

प्राणायाम का अभ्यास सावधानी पूर्वक शान्त एकान्त स्थान पर शान्त मन से करना चाहिए। अन्यथा लाभ की अपेक्षा हानि का भी भय रहता है। यदि युक्तिपूर्वक प्राणायाम न किया गया तो उसका परिणाम होगा-

अयुक्तयाऽभ्यासनाद् हिक्का कर्णरोग शिरोव्यथा।
श्वास का सादयो रोगाः दोषाः स्युर्बहवस्तथा।।

आनन्दकन्द 20/131

अर्थात, हिचकी, बहरापन, मस्तिष्क पीड़ा, दमा, खाँसी आदि नाना व्याधियाँ हो सकती हैं। अतः पढ़कर ही अभ्यास न करनें लगें । किसी योग्य गुरू की देखरेख में प्राणायाम की साधना करनी चाहिए।

तत्वधारणाः-जब प्राणायाम सिद्ध हो जाय तब प्राणायाम परायण रहते हुए प्रसन्नचित्त उपयुक्त आसन पर सीधे बैठकर पहले पंचतत्वों की धारणाओं का अभ्यास करना चाहिए। हमारा शरीर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पाँच तत्वों से बना है। इन पंचभूतों की सूक्ष्म तन्मात्राओं से कर्मेन्द्रियाँ तथा ज्ञानेन्द्रियाँ बनीं है। यदि हमारे अन्दर पाँचों तत्व ठीक-ठीक अनुपात में बनें रहतें है तो हमारा मन और चित्त ठीक कार्य करता रहता है अन्यथा शरीर रोगी और मन चंचल हो जाता है। अतः पंचतत्वों की धारणा का अभ्यास करना चाहिए। भगवान सदा शिव कहते है:-

'चेतसो निश्चलत्वं यद् धारणा सा स्मृता शिवे।'

जिससे चित्त निश्चल हो जाय उस क्रिया को धारणा कहा जाता है।

पार्थिवी धारणा-अपने हृदय में चौकोर स्वर्णाभभूमि के ऊपर लं बीजाक्षर युक्त श्री ब्रह्मा जी की प्रतिदिन दो घन्टे धारणा करने से स्तम्भन शक्ति आ जाती है तथा पृथ्वी तत्व पर जय हो जाता है।

वारुणी धारणा-प्राणों के साथ चित्त को कण्ठ स्थान में लगाते हुए अर्द्धचन्द्रमण्डल में कपूर और बरफ की तरह स्वच्छ अमृत भरते हुए वं बीजाक्षर युक्त भगवान विष्णु की दो घण्टे तक धरणा करने से कुछ समय बाद वारुणी विद्या की सिद्धि हो जाती है। जिसके प्रभाव से पित्तजन्य ज्वर, कालकूट विष तथा अन्य सभी प्रकार के विषों का प्रभाव साधक पर नहीं होता। उसका जल तत्व पर अधिकार हो जाता है।

वैश्वानरी धारणा-प्राण और मन को तालु स्थान पर टिका कर तप्त स्वर्ण की आभा युक्त त्रिकोण में रं बीजयुक्त रुद्र देवता की कल्पना करते हुए जलती हुई अग्नि तत्व की प्रतिदिन दो घंटे धारणा करनी चाहिये। यह धारणा सिद्ध हो जाने पर योगी वायु रोग, कफ जन्य रोग तथा अग्निभय से मुक्त हो जाता है।

वायव्य धारणा-दोनों भौंहों के बीच में नीले मेघ की आभायुक्त वर्तुलाकार वायुबीज यं सहित सत्य सनातन ईश्वर का चिन्तन करते हुए दो घण्टे प्रतिदिन वायु तत्व की धारणा करने पर वायव्य धारणा सिद्ध होती है जिसके प्रभाव से आकाशगमन सम्भव होता है। इससे भ्रामिणी सिद्धि प्राप्त होती है।

व्योम धारणा-ब्रह्मरन्ध्र के अन्तर्गत शान्त सर्वगत निराकाश व्योमतत्व है जहाँ सदाशिव भगवान अधिष्ठित है। वहाँ पर मृगतृष्णा के जल की आभा युक्त हं बीज सहित भगवान सदाशिव की दो घण्टे प्रतिदिन धारणा करते रहने से प्राण और मन के अन्दर चिदाकाश में चिर शान्ति प्राप्त होती है। यह नभोधारणा मोक्षदायिनी है। इस धारणा से योगियों के दैहिक, दैविक और भौतिक तीनों ताप दूर हो जाते हैं। इसे तन्त्रों में शमनी विद्या कहा गया है। ये सभी धारणायें अपने नाम और कर्म के समान ही फलदायिनी होती हैं।

शरीर में रोग कष्ट दें तो योगी साधक को चाहिये कि प्राणवायु को रोग के स्थान पर रोककर रोगकारक तत्व से विपरीत तत्व की धारणा कर आरोग्यलाभ कर लें। हमारे शरीर में पंचतत्व सर्वत्र व्याप्त हैं।तथापि कुछ स्थानों पर किसी एक तत्व की प्रधानता रहती है। यदि उस स्थान पर कोई रोग हो जाय तो प्रधान तत्व की वहाँ धारणा करते रहने पर रोग नष्ट हो जायगा। जैसे घुटनों से पैरों तक पृथ्वी तत्व प्रधानरूप से विद्यमान हैं। कमर से घुटनों तक जलतत्व की प्रधानता रहती है। कमर से लेकर शरीर के मध्यभाग तक अग्नि तत्व प्रधान है। नाभि के ऊपर नासिका पर्यन्त वायु तत्व प्रधान है। नासिका से ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त आकाश तत्व प्रधान है।

पृथ्वी तत्व प्रधान अंगों में रोग होने पर प्राणायाम पूर्वक दो घण्टे तक पृथ्वी तत्व की आकृति एवं रंग का ध्यान करते हुए पार्थिव धारणा करने से रोग मुक्ति हो जायगी । जल तत्व के लिये चार घंटे की धारणा करने पर रोग मुक्ति होगी । अग्नि तत्व स्थान के लिए

दस घण्टे की धारणा करनी चाहिए । इसी प्रकार आकाश तत्व के लिए दस घण्टे की धारणा फलवती होगी।

यदि संध्या काल (प्रातः, मध्याहन, सायं) में या सदा ही योगाभ्यासी साधक अपने प्राणों को रोककर मन की कल्पना द्वारा नाभिकन्द, नासिका के अग्रभाग तथा पैरों के अंगूठों में धारणा का अभ्यास करता रहता है तो वह सभी रोगों से मुक्त रहेगा तथा उसे किसी प्रकार की थकावट भी नहीं होगी ।

नाभि केन्द्र पर धारणा करने से पेट, यकृत, प्लीहा, (लिवर, किडनी, पेनक्रियास) मधुमेह आदि रोग नहीं रहेंगें। नासिका के अग्रभाग पर प्राणायाम सहित मन की धारणा करने पर शरीर में हल्का पन रहेगा, मोटापा दूर होगा तथा दीर्घायु प्राप्त होगी। यदि नासिकाग्र के साथ जिहवाग्र द्वारा ब्रह्म मुहूर्त में वायुपान करता रहता है तो तीन महीने में उस साधक को वाक्‌सिद्धि हो जायगी तथा लगातार छः महीने के अभ्यास से - कुष्ठ, यक्ष्मा, कैंसर जैसे महारोगों से उसे छुटकारा मिल जायेगा। प्राणवायु में अमृत तत्व है।उसका जिस जिस अंग पर उपयोग किया जायगा-वह अंग नीरोग होता चला जायगा। इसका उपयोग 'धारणा' के अभ्यास से ही सम्भव है।

प्रायः असमय में केश पकने लगते हैं और मुँह पर झुर्रियाँ पड़ने लगती हैं। झुर्रियाँ शरीर में पृथ्वी तत्व के क्षीण होने से पड़ा करती हैं। ऐसी स्थिति होने पर पार्थिव धारणा का अभ्यास करना चाहिये। केश श्वेत होने का कारण जलतत्व का क्षीण होना है। इस अवस्था में वारुणी धारणा श्रेयस्कर मानी गयी है। शरीर में अग्नितत्व के क्षीण हो जाने पर भूख और चेहरे की रौनक कम हो जाया करती है। ऐसी स्थिति होने पर तैजसी धारणा उपयोगी होगी।

शरीर के अंगो में कम्पन का कारण वायुतत्व की क्षीणता है। कम्पन होने पर वायवी धारणा करनी चाहिए । आकाशतत्व के क्षीण होने पर जीवन की आशा नही रहती। अतः आकाशतत्व की धारणा द्वारा दीर्घायु प्राप्त की जा सकती है। धारणा का अभ्यास - उड्डियान बन्ध लगाकर करने पर विशेष फलप्रद माना जाता है। उड्डियान बन्ध मृत्युरूपी हाथी के लिए केसरी का कार्य करता है। नाभि को ओर खींचकर ऊपर की ओर तानने से उड्डियान बन्ध लगता है। इसी के द्वारा पक्षी आकाश में ऊँचायी पर उड़ता रहता है।

धारणा की साधना करने वाले साधक को न तो मलमूत्र का वेग रोकना चाहिए और न भूखा रहना चाहिए । थोड़ा-थोड़ा कई बार खाने से शरीर के तत्व संतुलित बने रहते हैं। शरीर में यदि चेतन शक्ति भरपूर है, तो शिर के ऊपर बारह अंगुल अपना आभामण्डल व्याप्त रहेगा। आभामण्डल ज्यों-ज्यों क्षीण होता जाता है त्यों-त्यों मृत्यु का अतिथि बनने का समय निकट जानकर योगाभ्यास में डट जाना चाहिए। हमारे शरीर में अठ्ठारह मर्म स्थान माने गये हैं। उन स्थानों में शक्ति के केन्द्र हैं। अतः साधक को उन-उन मर्म स्थानों में प्राण शक्ति की धारणा करके अपने शरीर को नीरोग रखना चाहिये। मर्म स्थानो में -(पैर का अँगूठा, टखना, जंघा, घुटना, उरू, गुर्दा, मेढ्र, नाभि, हृदय, कण्ठकूप, तालु, नासिका, भौंह के मध्य,नेत्र, ललाट तथा मूर्धा आदि) प्राणों का आरोहरण अवरोहरण करते हुए विभिन्न धारणाओं का अभ्यास करते रहना चाहिए। ◆ ◆ ◆

किमस्ति योगः

रचियता-द्वारका प्रसाद शर्मा

३०६ए (अभिषेक) प्रियानिकुंज, एल्डिको उदयन दो, अतरेटिया , राय बरेली रोड, लखनऊ

हमारे भाई श्री द्वारका प्रसाद शर्मा, उत्तर प्रदेश शासन के सचिवालय से उप सचिव के समतुल्य (निजी सचिव विशेष श्रेणी)पद से सेवा मुक्त कई वर्ष पहले हो चुके है। अपने बहुमूल्य समय में से अधिकांश समय निकाल कर श्री गुरुदेव जी की कृपा से "योग क्या है" (किमस्ति योगः) अपनी संस्कृत रचनाओं में हिन्दी रूपान्तर सहित, समझाने का सफल प्रयास कर रहे हैं। इन्होंने अध्यात्म एवं अन्य विषयों पर संस्कृत में हजारों श्लोकों का प्रणयन किया है। इन की बाल्यावस्था से ही आध्यात्म परक विषयों वेद, उपनिषदों, योग-शास्त्र अध्ययन तथा साहित्य में रुचि रही है।

मुझे स्मरण आ रहा है कि श्री गुरुदेव जी के चरण कमलों में सतसंगी जिज्ञासु भक्ति योग के विषय में जानने की इच्छा प्रकट करते थे तथा पूज्य श्री गुरुदेव जी सरल भाषा में उन्हें थोड़े से ही में योग वास्तव में क्या है ? समझा दिया करते थे। अपनी 'योग क्या है ?' नामक पुस्तक में भी श्री गुरुदेव जी ने जिज्ञासुओं की जिज्ञासा का समाधान करने की महती कृपा की है और अब उन्हीं के अनन्यनिष्ठ शिष्य श्री द्वारका प्रसाद शर्मा जी अपनी संस्कृत रचना 'किमस्ति योगः' हिन्दी रूपान्तर सहित पाठकों के हितार्थ क्रमशः देते चले आरहे हैं। यह उनकी तीसरी क्रम बद्ध रचना है। आशा है पाठकगण अवश्य लाभान्वित होंगे।

भुवनेन्द्र झा

संयुक्त संपादक

यदा संयताश्चित्तगतास्तु वृत्तयः, स्थिराश्च ताः स्युः परमे स्वलक्ष्ये।
तदा भवत्येव स्वकीयरूपे, द्रष्टुरवस्थान म संशयेन।।1।।

चित्तगत वृत्तियां जब शान्त व स्थिर हो जाया करती हैं और अपने परम लक्ष्य में एकाग्र हो जाया करती हैं तभी अपने स्वरूप में अथवा द्रष्टा के रूप में विद्यमान आत्मा की प्रतीति निश्चित ही होने लगती है।

व्यवहारतोऽपि वयं विद्य एतत्, यस्मिंश्च कस्मिन्नपि वस्तुनि स्यात्।
स्वकीय मनसस्तु हठानुरागः सर्वत्र तत्रद् वयं कल्पयामः।।2।।

इस बात को तो हम लौकिक व्यवहार में भी जानते है कि जिसभी किसी वस्तु विशेष के प्रति यदि हमारा दृढ़ अनुराग हुआ करता है तो हम उसी वस्तु के चिन्तन में सर्वत्र एवं सर्वदा कल्पनाशील रहा करते हैं।

केचित्तु संस्कारवशात् स्वजनमतः, प्राग्जन्म कृत यत्नवशादथापि।
युक्तास्तथा योग परायणाश्च, भवन्ति यत्राद्य चरिताद्धि स्वल्पात्।।3।।

कई व्यक्ति अपने जन्म से ही अपने पूर्वजन्मों के संस्कार वश ओर यज्ञ आदि से भी स्वल्प आचरण के द्वारा ही योगनिष्ठ और योगपरायण हो जाया करते हैं।

अन्ये तथा योगिनो जन्मजाताः, लोकस्य भूत्यर्थमिहागताश्च।
शुकादि - सनकादि मुनीन्द्रप्रवराः देहे स्थितास्ते हि विदेहसंज्ञकाः।।4।।

कई अन्य योगिजन जन्मजात योगी होते हैं। वे संसार में जन कल्याण की भावना से प्रेरित हो आया करते है। शुक तथा सनकादि ऐसी ही कोटि के योगीन्द्र हुए है । वे देह में वर्तमान रहते भी विदेह सदृश आचरणशील हुआ करते हैं।

द्वावेव धन्यौ च प्रशंसनीयौ, निरूद्धय वृत्ती परमात्मनि मती।
तेषां कृते सूत्रमिदं सुभणितं, महामुनीन्द्रेण समाधिपादे।।5।।

दोनों ही कोटि के ऐसे योगिराज धन्य तथा प्रशंसनीय होते हैं। वे अपनी चित्तगत वृत्तियों का निग्रह करते है तथा सदा सर्वदा परमात्मा में स्थिर मतिमान हुआ करते हैं। उन्हीं ऐसे योगियों के निमित्त महामुनि श्री पतञ्जलि ने अपने योगदर्शन के समाधिपाद में इस सब का सुन्दर प्रस्तुतीकरण किया है। वह सूत्र है।

"भवप्रत्ययो विदेह प्रकृतिलयानाम्" पुरुषाणां संभवति ये विदेहाः।
अथवा तु भवति तान्नरान्वै, प्रकृतौ स्वे लयतां व्रजन्ति ये।।6।।

"भवप्रत्यो विदेह प्रकृतिलयनाम्"। वे इस संसार में आते हैं और लोक व्यवहार आदि सब कृत्य किया करते हैं- परन्तु वे देह में स्थित रहते भी विदेह होते हैं अर्थात उन्हें देहाभास नहीं रहा करता। इन्द्रियां अपना-अपना कार्य स्वभावानुरूप किया करती हैं। उन्हें इन्द्रियादिक के व्यवहार के प्रति न राग रहता है और न ही क्षोभ। वे स्वप्रकृतिस्थ होकर उसी में लीन रहा करते हैं।

यस्यास्ति यादशी वृत्तिः स्वरूपस्तस्य तादृशः।
दर्पणं वृत्तिरेवास्ति, कस्यापि मनसस्तु सा।।7।।

जिस व्यक्ति की जैसी वृत्ति हुआ करती है उसका स्वरूप भी उसी के अनुरूप बन जाया करता है। वृत्ति एक प्रकार से किसी भी व्यक्ति की मानसिक स्थिति का दर्पण हुआ करता है।

कृत्तयः पंचतथ्यो हि, क्लिष्टाऽक्लिष्टाभिधाः स्मृताः।
किलष्टाः क्लेशकराः सन्ति, अक्लिष्टास्तु विपर्ययाः।।8।।

क्लिष्ट और अक्लिष्ट नाम के भेद से पाँच प्रकार की वृत्तियां हुआ करती हैं। क्लिष्ट क्लेशकारी तथा अक्लिष्ट सामान्य रूप से उसके विपरीत प्रकार की होती है।

कृतयः पंचतथ्यस्तु, प्रमाणं च विपर्ययः।
विकल्पोऽपि तथा निद्रा, स्मृतिरेवास्ति पंचकम्।।9।।

वृत्तियाँ जो पाँच प्रकार की हैं वे इस प्रकार हैं। (1) प्रमाण (2) विपर्यय (3) विकल्प (4) निद्रा तथा (5) स्मृति।

प्रत्यक्षमनुमानञ्च, यद्यदागम् वर्णितम्,।
त्रीण्येतानि प्रमाणनि, स्वीक्रियन्ते प्रमाणवत्।।10।।

प्रमाण नामिका प्रथम वृत्ति के अन्तर्गत निम्न तीन उपभेद हैं। पहला प्रमाण है प्रत्यक्ष। किसी वस्तु आदि को स्वयं प्रत्यक्ष रूप में देख लेना। दूसरा प्रमाण हुआ करता है अनुमान लगाना। जहाँ धुंआ होगा वहाँ अग्नि निश्चित है आदि । तीसरा प्रमाण हुआ करता है आपृवाक्य या वचन जो पवित्र शास्त्रों में जैसे जैसे जहाँ वर्णित हैं ये भी प्रमाण रूप में रखे गये हैं। वे मनुष्यमान के लिये 'प्रमाण' रूप में उद्धृत है।

निपर्ययो द्वितीयो यो, मिथ्याज्ञान त्वमावहेत्
न हि तिष्ठति रूपे स्वे, अतद्रूपे- प्रतिष्ठते।।11।।

दूसरी प्रकार की वृत्ति का नाम है विपर्यय । इसमें किसी वस्तु विशेष के प्रति मिथ्याज्ञान की अवधारणा की जाती है। वह वैसा होता नहीं है परन्तु कहने में या शब्दों में व्यवहृत हुआ करता है। जैसे आकाश में कुसुमों का होना आदि-आदि।

विकल्पस्तु तृतीयो हि, ग्राह्यः शब्देन केवलम्।
वस्तुस्तदविद्यमानः वस्तुशून्यो विकल्पितः।।12।।

तीसरी प्रकार की वृत्ति का नाम है विकल्प। यह भी वस्तु विशेष की अविधमानता

रहते भी वस्तु-शून्यता में विकल्प के रूप में प्रयुक्त रहा करती है।

वृत्तिश्चतुर्था निद्रा हि, भावहीना समाश्रिता।
भावस्य प्रत्ययो नास्ति, अभावालम्बना हि सा।।13।।

चौथी वृत्ति का नाम है निद्रा। इसमें किसी प्रकार का भाव नहीं रहा करता। इसे अतः अभावालम्बना वृत्ति भी कहा जाता है।

स्मृतिर्नाम्याऽपरा चापि, पंचमा वृत्तिरिष्यते
विषयस्यानुभूतस्य, स्मरणं कार्य ते यदा।।14।।

पांचवी वृत्ति का नाम है स्मृति। जिसमें अनुभूत विषय की स्मृति या स्मरण हुआ करता है।

वृत्तीनाम्तु निरोधाय, अभ्यासो हि निद्रानकम्।।
वैराग्यंचापि सम्मेल्य, निरोधो जायते तदा।।15।।

वृत्तियों के निरोध या निग्रह का उपाय है-अभ्यास करते रहना। इस अभ्यास के साथ ही साथ वैराग्य का भी पुट सम्मिलित रहे तब निग्रह सम्भव हो जाया करता है।

स्थितिरेषा तु संप्राप्या, स्वीय यत्नेन केवलम्।
अभ्यास संज्ञ को यत्नः, मुनिना यत् प्रकाशितः।।16।।

इस स्थिति की प्राप्ति केवल अपने ही किये यत्न द्वारा अर्थात निरन्तर अभ्यास से हुआ करती है। महामुनि पतञ्जलि ने इसे ही "अभ्यास" संज्ञा से अभिहित किया है।

वैराग्यमालम्ब्य कृतः प्रयासः निःश्रेयसे भवति योगपरायणस्य।
अभीप्सितं तद् विदधाति तस्य, योगप्रवत्तिं सुहढां करोति।।17।।

वैराग्य का आलम्बन ग्रहण कर किया गया अभ्यास ही योगपरायण व्यक्ति के लिये परम कल्याण का कारक बन जाया करता है। उसकी समस्त अभीष्ट व अभिलषित कल्याणकारी कामनाओं की उस योग द्वारा प्रतिपूर्ति हो जाया करती हैं।

वैराग्यं विषयेषु यावदिह संजायते मानसे,
वैतृष्ण्यं सकले हि दृष्टविषये संश्रूयमाणेऽपि च।
वैराग्यं वसतीह यस्य, हृदये, कृत्येषु वाक्षु तथा,
वैराग्यं परमं च ताहशमहो नून वशीकारकम्।।18।।

वैराग्य भी कैसा हो-आत्यान्तिक रूप से वैराग्य। मात्र सांसारिक दृश्यजात

पदार्थों में ही इच्छाओं और वासनाओं के शमन से ही वैराग्य पूर्ण न कहलायेगा। दृष्ट पदार्थों के साथ-साथ उन समस्त आनुश्रविक अर्थात सुनेजाने वाले दिव्यलोकों के भोग व ऐश्वर्यों के प्रति भी हार्दिक रूप से वितृष्णा हो जाना वैराग्य का सर्वतोभावेन उद्भव कहलाता है। ऐसा परम वैराग्य जब उदय हो जाय उसी का नाम वशीकार संज्ञक वैराग्य हुआ और वही वैराग्य की कोटि में सुप्रतिष्ठित हुआ करता है।

अभ्यासः परमो ह्येषः, मनसो यस्तु निग्रहः।

भगवद्चोऽपि तत्रास्ति, मनो दुर्निग्रहं चलम्।।

यही परम अभ्यास है जिसमें मन की वृत्तियों का निग्रह हो जाय । भगवद्गीता में मन के विषय मे ही इस अभ्यास की दुरधिगम्यता का बोध अखिलात्मा भगवान श्री कृष्ण स्वमुखारः विन्द से यों कराते हैं- मनो दुर्निग्रह चलम्:-अर्थात मन दुष्कर रूप में निग्रहणीय है और चंचल है।

कृपा गुरुणां यदि स्याल्लवापि, दुरूह विषयान्सरली करोति।

तथैव तेषां भविता कृपा चेत्, साध्यं न किं सर्वदिहास्त्यसाध्यम्।।

यदि श्री सद्गुरुदेव की स्वल्पा कृपा भी हो जाय तो वह दुरुह व जटिल विषयों को भी सरल कर दिया करती है। तथा उनकी ही यदि कृपा बरसेगी या होगी तो जो असाध्य सा लगता है वह क्या साध्य नहीं हो जाया करता। इसी लिये कहा जाता है-**मोक्षमूलं गुरोः कृपा**। यही है श्री सद्गुरुदेव की सर्वातिशायिनी महिमा का महाप्रभाव। जय जय जय सद्गुरुदेव।

नोटः-श्री सद्गुरुदेव की कृपा से **"किमस्ति योगः"** शीर्षक के अन्तर्गत महर्षि पतञ्जलि प्रणीत योगदर्शन के सूत्रों का आश्रय ग्रहण कर स्वरचित श्लोकों के माध्यम से एक एक सूत्र को लेते हुए आगे बढ़ने का यह मन्दमति मेरा एक दुस्साहसिक प्रयास तो अवश्य है परन्तु न जाने किस अज्ञात अन्तः प्रेरणा से अभिभूत में इसे सम्पूर्णता की ओर शनैः शनैः इसी क्रम में ले जाने के निमित्त बद्धपरिकट सा हो गया हूँ। इस महत्कार्य की पूर्ति बिना गुरु कृपा के सम्भव नहीं। और उनकी ही कृपाका प्रताप व प्रसाद है कि मैं अकिञ्चन योगदर्शन जैसे दुरधिगम्य, दुर्बोधि तथा अनुभूति मात्रैकगम्य विषय को हाथ में ले बैठा मात्र उन्हीं की अपने प्रति अपार कृपा का अवलम्ब ले।श्री सद्गुरुदेव ही तो मादृश मूकों को वाचालत्व प्रदान कर अपनी उस उक्ति को चरितार्थ कर रहे हैं-

कर्त्तुम कर्त्तुमन्यथा कुर्त्तुम - मूकं करोति वाचालम्- आदि।

यौगिक प्रश्नोत्तरी ?

प्रातःकालीन बेला में ध्यानाभ्यास के पश्चात् आश्रम के सभी ब्रह्मचारी जिनमें महिला और पुरुष दोनों ही थे, अपने गुरुदेव जी के आने से पूर्व ही आकर यथास्थान बैठ गये सभी ने क्रमशः उनके चरणकमलों का वन्दन किया और जय गुरुदेव के घोष से नभोमण्डल को निनादित करते हुये सबने अपना स्थान ग्रहण कर लिया श्री गुरुदेव ने कहा–बोलो क्या कोई जिज्ञासा है ?

विनीत भाव से दोनों हाथ जोड़कर एक शिष्य खड़ा हुआ और कहने लगा–पूज्य गुरुदेव जी! यदि कोई साधक अपने एक गुरु के आश्रम को छोड़कर किसी अन्य आश्रम में किसी अन्य गुरु की सेवा में जाना चाहे तो क्या इसमें कोई दोष होगा ? आचार्य गुरुवर इस प्रश्न को सुनकर मुस्कराये और बोले–सुनो सौम्य! कुलार्णव तन्त्र में इस सम्बन्ध में एक उत्तम परामर्श इस प्रकार दिया गया है–

मधुलुब्धो यथा भृङ्गः, पुष्पात् पुष्पान्तरं। ज्ञानलुब्धस्तथः शिष्यो, गुरो गुरवन्तरं व्रजेत।।

अर्थात्–जैसे मधु प्राप्ति के लिये भ्रमर एक फूल से दूसरे फूल पर जाता है, वैसे ही ज्ञान-पिपासु शिष्य एक गुरु से दूसरे गुरु की सेवा में जा तो सकता है, परन्तु ऐसा करते समय पूर्व गुरु के प्रति श्रद्धा और सम्मान के भाव में कोई कमी नहीं आनी चाहिये। ऐसा परिवर्तन तभी करना चाहिए जब साधक शिष्य को यह अनुभव होने लगे कि गुरु द्वारा उपदिष्ट साधन अपनाने पर भी उसे अभीष्ट सिद्धि प्राप्त नहीं हुई है तथा इसके लिये मुझे अन्यत्र जाना आवश्यक है। सम्भव हो तो अपने पूर्व गुरुदेव जी से भी इसकी अनुज्ञा ले लेनी चाहिये।

तत्पश्चात् एक अन्य शिष्य ने करबद्ध होकर श्री गुरुदेव से पूछा–हममें से अधिकांश बहुत से साधकों को जानते हैं किन्तु उन्हें फिर भी इष्ट सिद्धि प्राप्त नहीं होती इसका कारण क्या है ? श्री गुरुदेव ने उत्तर दिया हे सौम्य! तुम्हारा प्रश्न ठीक ही है और कुछ साधकों को यह शिकायत रहती है कि वे योगांगों के ज्ञाता तो हैं लेकिन साधन करने पर उन्हें वांछित सफलता नहीं मिलती। लेकिन यह शिकायत प्रायः ऐसे साधकों को रहती है जो न तो किसी सुयोग्य गुरु के चरणों में बैठकर उनके निर्देशन में योग साधनायें करते हैं और न ही योगानुशासन का पालन करना चाहते हैं। वे निरन्तर और दीर्घकालीन अभ्यास में भी जुटना नहीं चाहते। ऐसे साधकों को सफलता मिल ही कैसे सकती है। सुनो सौम्य! इस विषय में योग वेत्ताओं के इस परामर्श पर विशेष ध्यान देना चाहिए–

प्रशान्त चित्तस्य जितेन्द्रियस्य, गुणान्वितस्यऽऽगुरु से विनश्च।
नूनं भवेद्योग समस्त सिद्धिर्नान्येतरासक्त जनस्य कस्य।।

अर्थात् जो प्रशान्त चित्त जितेन्द्रिय गुणी एवं भली प्रकार गुरु की सेवा करने वाला होता है उसी को योग सिद्धियाँ सुलभ होती हैं, अन्य विषयासक्तों को नहीं। उपर्युक्त श्लोक में **गुणान्वितस्याऽऽगुरु सेविनश्च** शब्द है इसका आशय यही है कि बिना सद्गुरु के भली प्रकार सेवा किये योग साधन सिद्ध नहीं हो सकता। सद्गुरु की प्रसन्नता से ही आत्मदर्शन का लाभ होता है। **आचार्यवान्पुरुषोवेद** कथन से भी इसी का समर्थन किया गया है। जो गुरु वाला होता है वही आत्मलाभ कर सकता है।

अतः इन गुणों को साधक को धारण करने का सदैव प्रयत्न करना चाहिए तथा आहार भी योगाभ्यासियों को सदैव परमित और सात्विक ही रहना चाहिए इससे सात्विक विचार बनेगा और विचारों के सात्विक बनने से जीवन का सारा क्रियाकलाप ही सात्विक बन जायेगा।

महामंत्र द्वारा महापूजा

डा० विजय सिंह सेण्ट एण्ड्यूज कालेज, गोरखपुरा रीडर गणित विभाग-१

सिद्धयोग ही महायोग है। साधक का सद्गुरु के सानुकूल होना ही शक्तिपात का कारण बन जाया करता है। शक्तिपात शिष्य के मूलाधार में सुप्त कुण्डलिनि को जागृत करके बलात अन्तर जगत की ओर उन्मुख करती है। पूर्व जन्मों के संस्कारों एवं मकार्णवों का शोधन तभी शुरू होता है। साधक जाग्रत शक्ति के प्रभाव से चक्रों के भेदन में सक्षम होता है और उसमें इच्छा, ज्ञान, क्रिया, चिद् एवं आनन्द का क्रमशः विस्तार एवं स्वातंत्र का बोध होने पर कराता है। अतः शिष्य का महत कर्तव्य हो जाता है कि अपने आत्म उत्थान के लिये सद्गुरु प्रदत्त मंत्र को अवधारणा के साथ नित्य सद्गुरू प्रितियार्थ उनकी पुजा करें। इससे अन्तरायों का शमन एवं दिन दुना रात चौगना आत्म प्रकाश का विस्तार होता है।

मूलाधार से ब्रह्म-रन्ध्र तक व्याप्त रहने वाली साक्षात् **अमृतानन्द-रूपवाली** जो कामाग्नि-शिखा के ऊपर कोटि सूर्यों की चमक एवं कोटि चन्द्रों जैसी शीतलता तथा उज्जवल ज्योति से परिपूर्ण सद्गुरू की ही कृपा शक्ति है, उसे साधक को प्रातःकाल अपनें शिर में श्वेत कमल पर दो नेत्र, भुजा वाले शान्तिमय गुरुदेव का जो हाथों में वर और अभय मुद्रा किये हुए है, उनका ही नाम सहित स्मरण एवं ध्यान करें।

प्रातः शिरसि शुक्लेऽबजे द्वि-नेत्रं द्वि-भुजं गुरुम् वराभय- करं शान्तं स्मरेत् तन्नाम्-पूर्वकम्।। (विश्वसार)

'गुरु-कवच' में भी कहा है-

सहस्त्रारे महा-पद्मे कर्पूर–धवलो गुरूः।

उपरोक्त धारणा को स्थिर कर साधक मानसिक पूजन करे। भूम्यात्मक गंध देकर भाव पुष्प अर्पित करे। वाय्वात्मक धूप देकर तेज से दीप दिखावें। अमृत नैवेद्य अर्पित कर वरुणात्मक पेय जल देना चाहिए। आकाश-रूप दर्पण दिखाकर। गुरु प्रदत्त मन्त्र का यथा-शक्ति जप करना चाहिए। पुनः सद्गुरु का ध्यान निम्न गुरु-गीता में वर्णित भावानुसार मानस में करना चाहिए।

हृदम्बुजे कर्णिक-मध्य संस्थं
सिहांसने संस्थित-दिव्य-मूर्तिमा।
ध्यायेद् गुरुं चन्द्र-कला प्रकाशं
सच्चित्-सुखाभीष्ट-वर-प्रदानम्।।
मुक्ता-फलाभूषित-दिव्य-मूर्ति
वामाङ्ग-पीठ-स्थित-दिव्य-शक्तिम्।
श्वेताम्बरं श्वेत-विलेप-युक्तं
मंद-स्मितं पूर्ण-कला-निधानम्।।

अर्थात-हृदय कमल की कर्णिका के मध्य में, सिंहासन पर विराजमान दिव्य स्वरूप वाले सद्गुरुदेव का ध्यान करें। वे चन्द्र-कला से प्रकाशमान हैं, सच्चित् के सुख से अभिष्ट वर दाता हैं, मोतियों से उनका दिव्य शरीर विभूषित है, बाँए अंग के पीठ पर दिव्य शक्ति विराज

रही हैं, श्वेत वस्त्र पहने , श्वेत चन्दनादि का लेप लगाए हैं, मन्द मुस्कान कर रहे हैं और पूर्ण कला से युक्त हैं। पुनः निम्न श्लोक के भाव को धारण करता हुआ नमन करना चाहिए-

ब्रहमानन्दं परम-सुखदं केवलं ज्ञान-मूर्तिम,
द्वन्दातीतं गमन-सदृशं तत्वमस्यादि- लक्ष्यम्।
एकं नित्यं विमकमचलं सर्वदा साक्षिभूतम्,
भावातीतं त्रिगुण- रहितं सद्गुरु तं नमामि।।

अर्थात - ब्रह्मानन्द -स्वरूप, परम सुखदायक, एकमात्र ज्ञान मूर्ति द्वन्द्वों से परे, आकाश के समान सर्वव्यापी, "तत्वमसि" आदि आप्त वाक्यों के मर्मज्ञ, नित्य, निर्मल, स्थिर, सदासाक्षी, भावातीत, त्रिगुणों से परे सद्गुरु को नमस्कार करता हूँ।

कङ्काल मालिनी तन्त्र में "गुरु-कवच" दिया है। देवी महेश्वर से पूछती हैं-

भूतनाथ। महादेव। कवचं तस्य मे वद,
गुरु-देवस्य देवेश। साक्षाद्- ब्रह्म- स्वरूपिणः

इस पर भूतभावन महेश्वर ने कहा कि मंत्र साधना में बहुत से साधक लगे रहते हैं किन्तु उन्हें सिद्धि नहीं मिलती-क्योंकि वे गुरुपूजन और कवच को नहीं जानते। इससे उनका परिश्रम व्यर्थ जाता है। जिन्हें सद्गुरु कृपा से कल्याणकारी कवच प्राप्त है। उन्हें मन्त्र की सिद्धि तुरन्त प्राप्त होती है। यह परम गोप्य है-

ॐ नमोऽस्य श्री गुरु-कवच-नाम-मन्त्रस्य-परम-ब्रह्मर्षिः, सर्व-वेदानुज्ञों देव-देव श्री आदि शिवो देवता, नमो हसौः हंसः हसक्षमलवरयूं बीजं, सोऽहं हंसः हसक्षमलवरयूं शक्तिः, हंसः सोऽहं कीलकं श्री समस्त-गुरु-मण्डल-प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः।

दक्षिणामूर्ति संहिता के सप्तम पटल में वर्णन है कि अजपा के ज्ञान-मात्र से साधक पर ब्रह्म रूपता को प्राप्त होता है।

'**हंसः**' शब्द का जप प्रतिदिन करना चाहिए। श्री सद्गुरु की कृपा से इसे जानकर उच्छवास और निःश्वास के साथ सदा जप करना चाहिए। इससे सर्व बन्धनों का क्षय होता है। उच्छवास में अर्थात् साँस लेते समय और निःश्वास में अर्थात सांस छोड़ते समय "हंसः"इन दो अक्षरों का जप करने से प्राण हंसात्मक बनकर आत्मा में स्थित हो जाता है तथा नाभि में उच्छवास-निःश्वास द्वारा हृदय की अग्नि व्यवस्थित होती है।

दिन रात 21 हजार छः सौ बार प्राणी प्राण द्वारा जप करता है। जन्म से इस जप का प्रारम्भ और मृत्यु के साथ इसका समापन होता है। आनन्दकन्द श्री सद्गुरु भगवान अपने प्रत्येक प्रवचन में हम सभी को इस बात का स्मरण अवश्य कराते थे कि तुम सभी उठते-बैठते चलते-फिरते अपने गुरु मंत्र का अधिकाधिक जाप करते रहा करो। ऐसा करने से तुम्हारे मन में आत्मिक तेज व्याप्त हो जायेगा जिससे तुम अपना कल्याण करोगे ही साथ ही जिसके प्रति तुम्हारे तन में भाव बनेगा उसका भी कल्याण सम्पादित होगा।

सद्गुरु तत्व सर्वोपरि है-

गुरोः कृपाप्रसादेन ब्रह्म-विष्णु-महेश्वराः।
सामर्थ्य तत्प्रसादेन केवलं गुरुसेवया।।

सद्गुरु की प्रसन्नता से ही ब्रहमा-विष्णु -शिव का सामर्थ्य संसार में प्रकट है। "गुरुतत्व"

क्या है? कोई शरीर अथवा हाड़ मांस का पुतला गुरुतत्व नहीं है।

"पुर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्" इसीलिए श्वेताश्वर उपनिषद मे वर्णित है

यस्य देवे परा भक्तिर्यथादेवे तथा गुरौ। तस्यैते कथितह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

अतः सभी साधकों को गुरुप्रदत्त मंत्र में पूर्ण निष्ठा रखकर अधिकाधिक जाप करते रहना ही महामंत्र द्वारा सद्गुरुदेव की महापुजा है।

• • •

लेखकों से....

सिद्धयोग के सुविज्ञ लेखकों से अनुरोध है कि वे प्रकाशनार्थ हमें भेजी जानी वाली अपनी समस्त रचनाऐं लेख कविताऐं आदि कागज के केवल एक ही ओर लिखकर भेजें। रचनाएँ सुस्पष्ट सुलेख में होनी चाहिए। इससे हमें सम्पादन और प्रकाशन के कार्य में अतीव सुविधा मिलेगी। धन्यवाद!

—सम्पादक

क्रोधोऽपि देवस्य वरेण तुल्यः

(देवों का क्रोध भी वर की तरह (ही कल्याणप्रद) है)

पं. राजेन्द्र पाठक (तिनसुखिया) आसाम

असत् और परिवर्तनशील वस्तु में सद्भाव आने या उन वस्तुओं का ज्यादा आदर करने से ही कामनाएं पैदा होती, बढ़ती एवं दृढ़ भी होने लगती हैं; इसके विपरीत ज्यों -ज्यों कामनाएं नष्ट होती हैं, त्यों-त्यों साधुता, आती है परन्तु ज्यों-ज्यों कामनायें बढ़ती हैं त्यों-त्यों साधुता सद्र दोषादि के कारण लुप्त होने लगती है। अतः असाधुता का मूल कारण कामना है। साधु पुरुष के भावों और क्रियाओं में पशु, पक्षी , वृक्ष, पर्वत, मनुष्य, देवता, पितर, ऋषी, मुनि आदि सबके हित के साथ-साथ, स्वयं के उद्धार के साथ लोगों का स्वतः उपकार होता है। मानस संकेत करता है-

"हेतु रहित जग जुग उपकारी।
तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी।।"

(मानस 7/47/3)

परन्तु यदि साधु पुरुष के मन के भावों को सब लोग जान जाँय तो हर व्यक्ति उसके चरणों का दास बन जाए, इसके विपरीत भी यदि लोग दुष्ट पुरुषों के मन के भावों को जान जाय तो लोग उसकी पिटाई कर देवें। इन सब परिस्थितियों में व्यक्ति के विशिष्ट संस्कार ही उसे ईश्वरीय शक्ति प्रदान करते हैं। जिस प्रकार तप्त सूर्य की किरणों के सम्मुख बादल या अवनी-स्थिति जलादि शुष्क ही नहीं, बादल या वर्षा का रूप धारण कर लेते हैं ठीक वैसे ही श्री सद्गुरु द्वारा दी गयी शक्ति, हर एक निराधार परिस्थितियों का आधार बनती है। परमेश्वर श्री प्रभु जी सर्वदा अपने अमृतमय वचन में संस्कार का विशिष्ट महत्त्व देते हैं। यहाँ पर एक शंका उद्भूत होती है, कि यदि साधु पुरुषों की रक्षा स्वयं श्री प्रभु जी ही सर्वदा करते हैं तो साधु पुरुष दुख क्यों पाते हैं? इसका वस्तुतः समाधान यह है कि साधु पुरुषों की रक्षा का तात्पर्य, उनके भावों की रक्षा है, शरीर, धन-सम्पत्ति, मान-बड़ाई आदि की रक्षा नहीं है।, कारण कि वे करुणाधार इन सांसारिक पदार्थों को महत्व ही नहीं देते और ये उन सांसारिक जीवों के कर्मों का प्रतिफल है, अब रही बात फल कच्चा है अथवा मीठा या खट्टा-निर्भर करता है, कर्मों के प्रारब्ध वश, परन्तु कभी- कभी अच्छे कर्मों का प्रत्यक्ष फल भी खट्टा(विपरीत) हो जाया करता है, इसका भी समाधान पूर्व जन्मों के संस्कार से ही है- जिसका जिससे लेना-देना होता है उसका भोग-भुक्त एवं भुगतानवश"अवश्यमेव भोक्तव्यं जन्म कर्म शुभाशुभम्" के अनुसार हर एक योनियों का, हर एक योनियों के संसर्ग वश आता ही है। हर योनियों का, हर एक योनियों के संसर्ग से तात्पर्य है कि- कृषक खेती करता है। विद्वत जन नैतिक ज्ञानादि कर्मों में रत रहते हैं, व्यापारी-व्यापारादि क्रियाओं में तल्लीन रहता है। इतना ही नहीं बल्कि विवशता या सहजता वश आप विचार करके देखें - क्या इन क्रियाओं में जिनके या जिन-जिन लोगों से संसर्ग हो रहा है- शत् प्रतिशत् सत्यता दर्शायी जा सकती है? शायद नहीं । वस्तुतः कार्य असम्भव के साथ-साथ कठिन भी है, अतः इन सब कर्मों के सञ्चय से ही प्रारब्ध या भाग्य बनता है जिसका प्रारूप ही संस्कार है, जिसे स्वयं श्री सद्गुरु का तेज पुन्ज ही

सूक्ष्म दण्ड विधानादि से निवारण कर दिया करते हैं। अतः कर्म में अकर्म (अच्छे कर्म का बुरा फल) तथा अकर्म में (बुरे कर्म का अच्छा फल) कर्म को देखना ही साधुता का लक्षण है तभी तो भक्त लोग प्रतिकूलता (दुःखदायी परिस्थिति) में विशेष प्रसन्न होते हैं क्योंकि प्रतिकूल परिस्थितियों में जितना आध्यात्मिक लाभ होता है उतना किसी दूसरे साधन से नही होता। वास्तव में देखा या सोचा जाय तो भक्ति भी प्रतिकूलता में ही बढ़ती है। सांसारिक राग, आसक्ति से ही पतन होता है और प्रतिकूल परिस्थिति के कारण, वह राग—वह बढ़ा हुआ प्रेम-बन्धन टूटता है अतः श्री प्रभु जी द्वारा भक्तों के लिये प्रतिकूल परिस्थितियाँ भेजना भी भक्तों की रक्षा करना है। वस्तुतः यह अवस्था एक चेतावनी ही है जिसमें स्वयं के लिये स्वयं से सम्हलने जैसी बातों का रहस्य है। सबकुछ वही हैं। कहीं वह गुप्त हैं तो कहीं प्रकट। हम मात्र-द्वैत-अद्वैत, अपने-पराये, अच्छे-बुरे आदि के भ्रमादि विचारों के कारण, जीवन- वृत्त की परिधि के उस केन्द्र तक नहीं पहुँच पाते हैं जिसका मात्र कारण उसी वृत्त में स्थित हमारे स्वार्थ के हर स्थल पर भ्रमित केन्द्र है।

एक बार एक निर्धन को अपना एवं परिवार का निर्वाह जंगल की लकड़ियों से बनाये गये कोयले बेच -बेच कर करता था, भाग्यवश एक सन्त महापुरुष से मुलाकात हो गयी। निर्धनता की स्वार्थपरता से वशीभूत वह अपने प्रारब्ध को उन महापुरुष से दीनता वश वर्णन किया। महापुरुषों की विलक्षणा दुग्ध के समान ही स्वभाव लिये होती है—दुखी व्यक्ति पर सहजता से कृपा करना और क्रोध में दुग्ध की उबाल के समान तत्काल ठंडा होना किन्तु स्वभाव में किसी प्रकार की अहित की भावना से करोड़ों कोस दूर वह साधु निरीह अनुनय पर कृपा करते हुये, महात्मा ने स्वयं द्वारा पल्लवित एवं पुष्पित चन्दन के वृक्षों का सुन्दर सा बाग ही आशीर्वाद के रूप में दे दिया और स्वयं वहाँ से वृन्दावन की ओर प्रस्थान कर दिये। इतना सुन्दर सुगन्धित तथा मूल्यवान वृक्ष की अमूल्य निधि की पहचान, अपनी स्वार्थ परता के वशीभूत हो वह वृद्ध निर्धन प्रसन्नता की अधिक मुद्रा के बावजूद भी इसके मूल्य को न जान सका, अतः अज्ञानता वश उसनें चन्दन के वृक्षों को काट-काट कर लकड़ी के रूप में परिवर्तित कर कोयले बना कर जीवन यापन करते हुए दीर्घ काल में पूरे वन को बेच कर समाप्त कर दिया। बहुत समय बीतने पर वह महात्मा उधर से ही जब आने का सुअवसर मिला, तो उन्होंनें देखा कि वृद्ध ने इतने मूल्यवान बाग को जला कर भस्म कर दिया तथा पहले जैसी ही गरीबी में उसका समय व्यतीत हो रहा है। महात्मा ने पूछा कि क्या उस लकड़ी का कोई टुकड़ा अवशेष है उन वयोवृद्ध नें एक छोटा सा टुकड़ा बहुत ढूढ़ कर कहीं से लाये। सन्त महात्मा ने आदेश दिया कि तू जिस बाजार में इन लकड़ियों को कोयला बनाकर बेचता रहा उसी स्थल पर इसे बिना कोयला बनाये ले जाओ। उस बाजार में कुछ धनी लोगों ने इसे सुगन्धित चन्दन की बढ़िया मनोहारिनी लकड़ी समझ सैकड़ों रुपये देकर खरीद लिया। उस वृद्ध ने अपनी अज्ञानता को सन्तमहापुरुष के सम्मुख प्रकट कर अति विलाप कर पुनः उनसे वैसा ही चन्दन सरीखे बाग का वरदान माँगा सन्त महापुरुष नें अपनी मधुर वाणी से उसे अलोकित किया और कहा-"ऐसा वरदान जीवन में केवल एक बार ही प्राप्त होता है।" बाईबिल भी संकेत करता है

कि"हम अपनी सारी जीवन निधि कौड़ियों के भाव बेच देते हैं। परन्तु इस मनुष्य शरीर की मूल वास्तिविकता का पता भी मृत्यु के समय ही लगता है तब यह जीवात्मा पश्चाताप करता है कि उसने इस अमूल्य निधि को व्यर्थ ही खो दिया। अतः हमें योग योगेश्वर अनन्त श्री प्रभु जी द्वारा दिये गये अमृतमय बचन निधि का सेवन करके परमात्मा की आवाज के साथ आत्म साक्षात्कार कर लेना चाहिये- **"सद्‌गुरु देव अचल विश्वासा"**

सिद्धयोग अपनाओ

प्रभु रामलाल का सुमिरन करके अपने भाग्य जगाओ।
गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन में सच्चा प्रेम बढ़ाओ।।
भव से पार करेंगे तुझको सच्ची प्रीत जगाले।
आदेशों को सन्देशो को जीवन में अपनाले।।
भजन करों और ध्यान धरो नित कर्म करो तुम प्यारे।
गीता का उपदेश यही है बनो प्रभु के प्यारे।।
बिना कर्म ना धर्म बनेगा, कर्म की जोत जगाओ।
गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन में, सच्चा प्रेम बढ़ाओ।।
सिद्ध गुफा है मात हमारी, सिद्धयोग की धारा।
श्रद्धा से जो ध्यान धरेगा, दीखे दिव्य नजारा।।
महा शक्ति है महाप्रभु की, शरणागत का सहारा।
चरण शरण में जो भी आता भव से उसको तारा।।
सिद्धगुफा पर आकर प्यारे अपने पाप भगाओ।
गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन में, सच्चा प्रेम बढ़ाओ।।
महाप्रभु शिव शंकर प्यारे, सत्गुरु कृष्ण मुरारी।
जाग-जाग रे मूर्ख प्राणी, आयु यों ही गुजारी।।
चरण शरण ले महाप्रभु की, कट जा सब बीमारी।
शरण में आने पर तर जाती रामरति सी नारी।।
स्वांस-स्वांस में नाम जपो और प्रभु के गुण को गाओ।
गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन में सच्चा प्रेम बढ़ाओ।।
सब धर्मों को छोड़ शरण में, एक गुरु की आजा।
गुरु सेवा से श्री चरणों में सब तीर्थ फल पाजा।।
गुरु शरण में आने पर तो, रंक भी हो जाय राजा।
सिद्धगुरु की सिद्ध गुफा को नतमस्तक तुम होजा ।।
यही मार्ग है बृजमोहन का, सिद्धयोग अपनाओ।।

गणेश तत्व की उपयोगिता

आर. सी. ठाकुर 202/6 जे. के. कालोनी, कानपुर

मुमुक्षु मात्र के लिये अनुकरणीय सोऽहम वृत्ति जो जीवात्मा से परमात्मा तक फैली है या यूँ कहा जाये सभी अवतारो से लेकर परब्रहम परमात्मा तक सोऽहम रूपी आभा ऐसी व्याप्त है। जिसमें लय होकर ही सभी अवतार जीवात्मा परमात्मा का आत्मैक्य करते हैं। इसी में लय होकर जगतात्मा श्री कृष्ण गीता का दिव्य संदेश अर्जुन को निमित्त बनाकर पूरे विश्व को देतें हैं। सनातन धर्म के अनुसार पंचदेव पूर्ण बहम के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उन्ही पंचदेवों में गणेश जी का स्थान अग्रपूज्य होने की विशेषता रखता है। मनुष्यों का तो क्या देवताओं का भी कोई कार्य पूजन, हवन, यज्ञ आह्वान, स्मरण तथा साधना आदि सम्पन्न नहीं हो सकता। कौन सा वह तत्व कौन सी वह वृत्ति, कौन सा वह माध्यम है जिसके द्वारा अवतारों को, परम सत्ता परब्रहम परमेश्वर में प्रतिष्ठित किये हुये हैं? यहाँ तक शिव विवाह भी गणेश पूजन के बिना सम्पन्न नहीं होता। काल क्रम एवं मर्यादा के अनुसार तर्क संगत नहीं लगता परन्तु भारतीय संस्कृति के मर्मज्ञ भक्त शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपने इस दोहे, के माध्यम से इसका बड़ा अच्छा समाधान कर दिया।

मुनि अनुसासन गनपतिःपूजे, सभु भवानि।
कोई सुनि संसय करे जनि सुर अनादि जिय जानि।।

मुनि की आज्ञा से श्री शिव जी और पार्वती जी ने श्री गणेश जी का विधिवत पूजन किया। देवताओं को अनादि समझ कर कोई इस बात को सुन कर किसी प्रकार की शंका न करे कि गणेश जी तो शिव पार्वती की संतान हैं तब विवाह से पूर्व वे कहाँ से आ गये? परब्रहम अनादि है उनकी सृष्टि अनादि है, सृष्टि के नियामक भी अनादि होने के कारण वे पहले से ही विद्यमान हैं। जिस प्रकार भगवान राम केवल दशरथ पुत्र ही नहीं वरन् परब्रहम है। श्री कृष्ण अपने अनादि होने की अनुभुति तथा दर्शन माता यशोदा को करा देतें हैं।वैसे ही गणेश रूप में भी मुख्यत आठ अवतारों के रूप में अवतरित होते हैं–

1-	एक दंत	मूषक वाहन	जो मदासुर हन्ता हैं।
2-	वक्र तुण्ड	सिंह वाहन	जो मत्सरासुर हन्ता हैं।
3-	महोदर	मूषक वाहन	जो ज्ञान दाता तथा मोहासुर हन्ता हैं।
4-	गजानन	मूषक वाहन	सांख्यों के सिद्धि देने वाले लोभासुर हन्ता हैं।
5-	लम्बोदर	मूषक वाहन	क्रोधासुर हन्ता हैं।
6-	विकट	मयूर वाहन	कामासुर हन्ता हैं।
7-	विघ्नराज	शेष वाहन	ममासुर प्रहर्ता हैं।
8-	धूम्र वर्ण	मूषक वाहन	अहंतासुर हंता हैं।

योग मार्ग में विशेष कर सिद्ध योग साधनों में गणेश जी के स्वरूप का चिन्तन अथवा ध्यान ही मुख्य आधार माना गया है। श्री गणेश मूलाधार चक्र से कुण्डलिनी को जगाने की साधना प्रारम्भ होती है। यह कुण्डलिनी स्वयंभू लिंग को आवेष्टित करके सोती रहती है। उसे जगाकार सुषम्ना नाड़ी के अन्दर पथ बनाकर सहस्त्रार तक ले जाना ही तो मंत्रों का चरम लक्ष्य है। योगी चक्र कमलों का ध्यान करते हुये सहस्त्रार पद्म से प्रवाहित अमृत का पान करता है। यही पद्म श्रुति प्रदान करता है। इसी का दूसरा नाम कैलास है, यही अमर पद है।

संत गरीब दास जी के अनुसार मुक्ति है-

'मूल चक्र गनेश रक्त बरन जानिये'

गणेश पुराण 1/12/9 में ब्रहमा जी की उक्ति है–

सद् सद् व्यक्तमव्यक्त सर्वं हि गणनायक:।।

अर्थात् योग की साधना भूमि पर श्री गणेश जी सत्, असत्, व्यक्त, अव्यक्त सब कुछ हैं। श्री गणेश जी को तो वेदों के अगोचर माना गया है। गणेश पुराण में उनकी स्तुति इस प्रकार है–

परब्रह्म रूपाय निर्गुणाय नमो नमः
चिदानन्द स्वरूपाय वेदा नायप्यगोचरः

श्री गणेश चिदानन्द स्वरूप और वेदों के भी अगोचर हैं। वे निर्गुण और परब्रहम स्वरूप योग प्रति पाद्य परम तत्व हैं। इसलिये भी योग साधना में इनका चिन्तन एवं ध्यान परम आवश्यक है।

नारद पुराण के अनुसार ये पूर्णानन्द, परानन्द पुराण पुरुषोत्तम साक्षात् परब्रहम परमात्मा हैं। मूलाधार चक्र में स्थित गणेश पाद पद्म में ही यौगिक साधना का समारम्भ होता है। वस्तुतः योग साधना के आधार श्री गणेश जी ही हैं। इसलिये सद् गुरुदेव दीक्षा के समय अपनी बैखरी वाणी से शक्तिपात द्वारा सर्व प्रथम गणेश जी का ही दर्शन कराया करते हैं। शरीर स्थित असुर प्रवृत्तियों के हन्ता होने के कारण उनके विभिन्न अंग उनके विभिन्न हाथों में आयुध योग साधना में विलक्षण प्रकार से सहायक तो हैं ही परन्तु शुभ-सूचक भी इस प्रकार हैं-चार हाथ-चार वेद, चार पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चार भक्ति साधन गीता के अनुसार **मन्मना भव मद्भक्तो यच्याजीमां नमस्कुरु** 10/65। (1) मन में भगवत चिन्तन करते हुये भगवन्मय बनाना (2) भगवान में भक्ति रखना (3) भगवान की अर्चना करना (4) भगवान को नमस्कार करना ग्राह्य रूप भक्ति साधन प्रतिपादित करते हैं। चारों हाथों में क्रमशः पाश, अंकुश सुधापात्र, और मोदक लेकर वे उल्लसित हैं। पाश राग का अंकुश क्रोध का संकेत है। अथवा यह समझ लेना चाहिये कि गणेश पाश के द्वारा भक्तों के पाप समूह को तथा सम्पूर्ण प्रारब्ध का आकर्षण करके अंकुश से उसका नाश करते हैं। सुधा पात्र अमरत्व प्रदान करने के लिये, मोदक हस्त सम्पूर्ण ग्रन्थों का रस बिखेरता है। अनेक हस्तों में गणेश जी सुशोभित रहते हैं। किन्तु नारद पुराण के अनुसार (नारद,पु. प्र. तृ. 65/01-02)

मूलाधारे वादिसान्त वीजयुक्ते चतुर्दले।
बन्धूकामे स्वशक्त्या तु सहिता या खगायच।।
पाशङ्कुश सुधा पात्र मोदकोउल्लासपाणेय।

अर्थात मूलाधार चक्र में चारदल कमल हैं जो वन्धूक पुष्प के समान लाल है। उसके चारों दलों में वं शं षं सं अक्षर अंकित हैं। उसमें अपनी शक्तियों के साथ गणेश जी विराजमान हैं। वे चारों हाथों में क्रमशः पाश, अंकुश, सुधापात्र और मोदक हैं। सारांश यह है कि चार हाथ, चार वेद, चतुर्विध सृष्टि, चतुर्विद पुरुषार्थ, चतुर्विध भक्त , चतुरविध उपासना, चतुर दल कमल का संकेत करते हैं।

शूर्प कर्ण–अज्ञान रूपी धूलि उड़ाने के लिये तथा नाद सुनने हेतु (लम्बी सूड़- निर्मल विवेक का द्योतक है।) **नाग यज्ञोपवीत**–कुण्डलिनी का प्रतीक है। **मूषक**–कुतरने वाला मूषक नया पुराना जाने बिना कुतर्की को अपने नीचे दवाये हैं। **एक दंत**-एकत्व का बोधक है, **विशाल उदर**-सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को समा सकने एवम् उत्पत्ति करने की विशालता प्रदर्शित करता है।

दोनों चरण **अकार** तो विशाल उदर **उकार** तो मस्तक **मकार** ये तीनों जहाँ समाविष्ट होते हैं, वहीं आदि बीज ओंकार है। गजवदन गणेश की प्रणवाकृति ॐ है। सगुण रूप में गणेश जी ने अपनी लम्बी सुंड से परशुराम जी को लपेटकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड, सप्त सरोबर, सप्त पर्वत भूलोक भवलोक, स्वर्गलोक, ध्रुव लोक आदि के दर्शन कराके समुद्र में फेंक दिया था तथा फिर उठाकर गोलोक में सम्पूर्ण कलाओं से विभूषित कृष्ण तत्व की अनुभुति करा दी थी। यह सब योग प्रभाव का खेल तो था। गणेश जी रिद्धि सिद्धि एवं बुद्धि के प्रदाता हैं। परम पूज्य अनन्त विभुषित गुरुदेव श्री चन्द्रमोहनजी महाराज गणेश तत्व को ही साध्यतत्व, स्वतत्व, आत्मतत्व तथा परमात्म तत्व बतलाया करते थे। सिद्ध योगी उनके गुरु भाई श्री मुलखराज जी तो मूलाधार में स्थित रिद्धि सिद्धि को दासी बनाकर उनको विभिन्न कार्यों की पुर्ति हेतु आदेश दिया करते थे। गणेश तत्व की प्राप्ति बिना तो अन्य कोई तत्व की प्राप्ति हो ही नहीं सकती और न ही कोई योगी बन सकता है। गणपत्यपनिषद् के अनुसार श्रेष्ठ योगी वही है जो-

अभिर्भूतं च सृष्टया दौ प्रकृतेः पुरुषात परम्।
एवं ध्यायति योनित्यं स योगी योगिनां वरः।।

अर्थात्त सृष्टि के आदि में अभिभूत प्रकृति और पुरुष से परे श्री गणेश जी का जो नित्य ध्यान करता है। वह सब योगियों में श्रेष्ठ है। इसीलिये सिद्धयोगी गणेशतत्व से समारम्भ करते हैं और अपने साधकों को भी अपनी अहैतकी कृपा से शक्तिपात करके इस मार्ग में पथ-प्रदर्शन करके सर्वोच्च लक्ष्य तक पहुंचाते हैं । ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवता भी जिसके ध्यान में लीन रहते हैं। जिनके स्मरण मात्र से समस्त्त विघ्न नष्ट हो जाते हैं। उन्हीं पर ब्रह्म परमेश्वर को **ॐ श्री गणेशायनमः** कहते हुये कोई भी कार्य आरम्भ करें तो सफलता निश्चित है।

मामेकं शरणम् व्रज

पं. महेश बौहरे ज्योतिर्विद्
अभिभाषक राघोगढ़, (म.प्र.)

अनात्म में आत्म की उत्प्रेक्षा ही आसक्ति है तथा अनात्म के प्रति आत्म भावना के फलस्वरूप उत्पन्न हुई यह आसक्ति ही लौकिक मोह का मायाजाल है। अनात्म से आत्मसुख की अपेक्षा ही आत्म की उपेक्षा है तथा अनात्म की आसक्ति एवं आत्म की उपेक्षा ही लौकिक विडम्बना है।

आत्मभाव, आत्मचिंतन एवं आत्मजागृति परमात्म प्रेरक है। जिस प्रकार सरिता का नैसर्गिक बहाव सागर की ओर सुनिश्चित है, उसी प्रकार आत्मा का परमात्मा के प्रति नैसर्गिक अनन्यभाव सुनिश्चित है और यही नैसर्गिक अनन्तभाव आत्म और परमात्म की एकात्मा का गठबंधन है।आत्म और परमात्म में समावेश सुनिश्चित है। इसी आत्म और परमात्म को भगत और भगवान की संज्ञा दी गई है। गीता में भगत अर्जुन है तो भगवान श्री कृष्ण। अध्यात्म की भाषा में इन्हें ही गीता में जीव और ब्रह्म निरूपित किया गया है, गोस्वामी तुलसीदास नें भी **ईश्वर अंश जीव अविनाशी** की बात कही है, इसीलिये गीता में भगवान कृष्ण ने स्पष्ट रूप से बताया है:-

"मन्मना भव मद्‌भक्तो मद्याजी माम् नमस्कुरू,"
"मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे।"

अर्थात् भगत के द्वारा नैसर्गिक अनन्यभाव के साथ भगवान के प्रति नमन्, भगवत्प्राप्ति करवाता है, आत्म को परमात्म से तथा जीव को ब्रह्म से मिलवाता है।

भगवत होकर भगत जब भक्ति के बजाय आसक्ति के मोह-जाल में जकड़ता है तो आत्म को भूलकर अनात्म में खो जाता है। अविनाशी जीवात्मा आत्म से भटककर नश्वर अनात्म में आत्म सुख खोजती है। इस प्रकार जब जीव की नश्वर भौतिक अवस्था अनात्म की आसक्ति में बंधकर लौकिक मायाजाल में फंस जाती है तो वह अपने नैसर्गिक संसर्ग से वंचित होकर भव-भागों में भटकता रहता है, तब आत्म और परमात्म के बीच अनात्म आसक्ति के इस भटकाव से मुक्ति का मार्ग केवल आत्म का परमात्मलीन होने पर ही प्राप्त हो पाता है, यही यथार्थ एवं एक सुनिश्चित सत्य है जिसे गीता ने भी स्पष्ट रूप से बताया है:-

"सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज"

प्रभु के समीप दुःख की सत्ता नहीं

ब्र. रामानन्द सरकार

दूसरे का कुछ भी हो, उसका चाहे अहित हो, वह चाहे दुखी हो, हमारा भला होना चाहिए, हमें सदा सुख मिलना चाहिए। यह भावना हमारे दुःख का कारण है। यह एक नित्य सनातन नियम मान लेना चाहिए कि जिसकी ऐसी भावना है उसका भला होने वाला नहीं है उसके लिये सुख बहुत दूर की वस्तु है। सुख का स्वप्न वह भले देख ले, मन के लड्डू खा ले तथा यह भी सम्भव है-पूर्व अर्जित किसी शुभ कर्म के फलोन्मुख प्रारब्धवश वह यहाँ अभी जगत् की दृष्टि में ऊपर से सुखमयी परिस्थितियों से घिरा दीख पड़े। पर कहीं कोई उसके मन में प्रवेश करके देखे उससे मन की स्थिति पूछकर देखें, तो पता चलेगा कि उसके मन में सुख की छाया भी नहीं है। वह एक अत्यन्त साधारण स्थिति के मनुष्य की अपेक्षा भी बहुत अधिक अशान्त है। आज हममें से अधिकांश की यही दशा है। हम अपना काम बनाना चाहते हैं, दूसरे की उपेक्षा करते हैं। परिणाम यह होता है कि हमारा बनता ही नहीं, चाहें हम कितनी ही चेष्टा क्यों न करें और न बनने पर हम दुखी तो होंगे ही। जैसा हमारा शरीर है। इसमें आँख, नाक, कान, मुँह, सिर, कण्ठ, हृदय, पेट, कमर,हाथ, पैर आदि विभिन्न अवयव हैं। अब यदि आँख कहे कि हाथ टूटे तो टूटे, पैर कटे तो कटे हम ठीक रहें कान कहे कि आँख फूट जाय, नाक सड़ जाये, इससे हमारा क्या, हम ठीक बने रहें तो यह कैसी हास्यपद बात है? एक की हानि का प्रभाव दूसरे पर पड़ेगा कि नहीं? वैसे ही यह सारा विश्व एक ही प्रभु का शरीर है। हम सभी उस विराट शरीर के अंश हैं, परस्पर हम सभी जुड़े हुए हैं, सबके हित में हमारा हित, सबके सुख में हमारा सुख समाया हुआ है। हमें ऐसी अनुभूति इसलिये नहीं होती कि विषय व्यामोह में पड़कर हमारी बुद्धि ठिकाने नहीं है। जब तक हमारी यह स्थिति अनुकूल नहीं हो जाती, तब तक यह हमारा,यह दूसरे का, हम सुखी रहें दूसरे से हमें क्या मतलब? यह वृत्ति बनी रहेगी और हमें दुख देती ही रहेगी। हमें इतने प्रकार के भय घेरे रहते हैं जिनकी गणना सम्भव नहीं। संक्षेप में कहने पर हम यों कह सकते हैं कि जो कुछ हमारे पास प्रिय वस्तुएँ विद्यमान हैं उनमें से प्रत्येक के छिन जाने का भय तथा जो-जो हमारी अभिलषित वस्तुएँ हैं जिनके लिए हम प्रयास करते रहते हैं उनके न मिलने का भय, इस प्रकार अगणित भय, हमारे सामने खड़े रहते हैं, कुछ अव्यक्त चेतना में कुछ प्रत्यक्ष रूप से। ऐसी स्थिति में हम दुखी न हों तो और क्या हों पर यह भी है हमारी अज्ञानता ही। क्या यह सम्भव है कि परम सुहृद, प्रभु हमारी आवश्यक वस्तु हम से छीन लें अथवा हमारी आवश्यक वस्तु हमें न दें? यहाँ का कोई सच्चा मित्र भी जब ऐसा नहीं करता, तब जिन प्रभु से समस्त विश्व में मित्र भाव का संचार होता है, जो समस्त प्रेम भावनाओं के उद्गम हैं जो सब कुछ करने में समर्थ हैं, जो हमारे मन में होने वाले प्रत्येक सूक्ष्मतम स्पन्दन से भी नित्य परिचित रहते हैं, वे कभी भला ऐसा कर सकते हैं? कभी नहीं करेंगे, कर ही नहीं सकते। निरन्तर देते

रहना तो उनका स्वभाव है। हमारे लिये नित्य नव आनन्द का सृजन करना ही उनका काम है। जो वस्तु हमारे लिये आवश्यक है, हानिकर सिद्ध होने लगती है उसे वह हटा देते हैं तथा ऐसी वस्तुएँ माँगने पर भी चेष्टा करने पर भी सामने लाकर नहीं रखते, इतना तो अवश्य करते हैं। पर इससे हमें भयभीत क्यों होना चाहिये ? बिना हमसे कुछ याचना किये हमारे लिये नित्य-निरन्तर इतनी सुन्दर व्यवस्था करने वाला, हमारी रक्षा करने वाला, हमारा अकारण स्नेही मित्र भला कोई दूसरा मिलेगा ? किन्तु हमें ऐसी प्रतीत नहीं होती और हम डरते रहते हैं। डर-डर कर दुखी होते रहते हैं। हाय रे! ऐसा हो गया तो क्या होगा। ऐसा नहीं हुआ तो क्या दशा होगी। इन चिन्ताओं के जाल में पड़े रहने के कारण हमारा दुःख प्रतिक्षण बढ़ता रहता है। प्रतीत हो भी तो कैसे हो। हम श्री प्रभु की ओर नजर उठा कर देखमें तक नहीं, हमें उनकी आवश्यकता ही अभी प्रतीत नहीं होती। यदि हम उनकी ओर देखने लग जाते तो प्रत्येक भय के स्थल में ही उसके अन्तराल में उनका हँसता मुख हमें दीख जाता। फिर भय कहाँ, दुःख कहाँ ? हमें जो करना चाहिए वह तो हम करते नहीं और जो नहीं करना चाहिये, वह करते रहते हैं। दुःख का यह चौथा कारण है। ऐसा नहीं है कि हमें करने एवं न करने योग्य का पता ही न हो हममें से अधिकांश को अधिकांश स्थल पर अपने सहज ज्ञान से यह संकेत मिलता रहता है, पर हम उसकी उपेक्षा कर जाते हैं। जो आस्तिक जगत् में रहते हैं सत्-चर्चा सुनते-कहते हैं, उनको तो यह विशेष रूप से पता रहता है, कि ऋषियों के अमर सन्देशों से वे प्रायः परिचित रहते हैं। "तुम्हें सत्य से कभी प्रमाद नहीं करना चाहिये, कभी नहीं डिगना चाहिये। बहाना बनाकर आलस्यवश धर्म की अवहेलना नहीं करनी चाहिये। कुशल शुभ कर्मों से तम्हें प्रमाद नहीं करना चाहिये। श्री प्रभु के द्वारा सौंपे हुये शुभ कर्मों का त्याग या उसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये।" पर हम ऐसे कितने हैं जो जानते रहने पर भी, यह सोच-समझ रखने पर भी ऐसा न करते हों ? विषयों से सुख पा लेने की लालसा में न जाने कितनी बार कितनी बुरी तरह से हम इन योग नियमों को तोड़ते हैं। और जैसे सड़क से नीचे दाहिने बायें मत झुको, गड्ढा है सर्वथा सीधी राह जाओ। इस सूचना की अवहेलना करने पर हम नीचे गिरेंगे ही, चोट लगेगी ही, वैसे ही श्री प्रभु के द्वारा स्थापित सनातन नियमों का उल्लंघन चाहें हम लुक-छुप कर करें या भरी सभा में जनमत एकत्र कर सर्वसम्मति से उचित सिद्ध करा करें, पर हमारा पतन रुक नहीं सकता, सत्पथ से हम दूर हटेंगे ही और दुःख का बोझ उठाना ही पड़ेगा। इसकी अभिव्यक्ति अनेक रूपों में होती है। हमें निमित्त बनाकर कहीं कोई-सी सुन्दर घटना घटित हुई कि हमारा अहम्भाव जाग उठता है उसका सारा श्रेय हम अकेले ही ले लेना चाहते हैं। 'अजी, मैं नहीं होता तो ऐसा कभी हो ही नहीं सकता। इस प्रकार अपने को सामने रखने में हम लज्जा का अनुभव नहीं करते। यदि हम शिष्ट हैं तो हमारे कहने की भाषा सुन्दर शालीन हो सकती है। हमारे उस कथन में ऊपर से देखने पर केवल विनम्रता भरी दीख सकती है तथा कभी-कभी तो जनता पर यह छाप तक पड़ सकती है कि हम उस कार्य का श्रेय सर्वथा लेना ही नहीं चाहते, किन्तु असल में हमारा मन ही जानता है कि हम क्या चाहते हैं ? और कभी इससे भी बहुत अधिक सूक्ष्म अभिव्यक्ति इसकी होती है। हम अनुभव करते हैं कि हमें इसका श्रेय नहीं चाहिये पर बिना माँगे, बिना चाहे हमें जब श्रेय मिलने लगता है, तब हमें सुख की

अनुभूति होती है। यह सुख की अनुभूति वास्तव में प्रच्छन्न अहम्भाव की ही अभिव्यक्ति है। जो हो जानने की बात यह है कि चाहे जहां, जिस रूप में, जिस मात्रा में इसकी अभिव्यक्ति होगी, वहाँ उसी रूप से, उतनी मात्रा में ही हमारे लिये यह अभिव्यक्ति दुःख का सृजन कर ही देगी। हम तनिक सोचें, हमारी जिन इन्द्रियों की सहायता से यह कार्य सम्पन्न हुआ है, जिस मन के विचार उसे सम्पन्न करने में हेतु बने हैं, जिस बुद्धि का निश्चय उसे अब तक सफलता की सीमा तक निभा ले गया है, उन इन्द्रिय-मन-बुद्धि में शक्ति कहाँ से आयी है ? श्री आनन्द कन्द महाप्रभुजी की शक्ति ही तो इन्द्रियों मे व्यक्त होती रही है, उनकी शक्ति ने ही तो वैसे सुन्दर विचार मन में उद्बुद्धि किये थे, बुद्धि की वह निश्चयात्मिका शक्ति भी तो श्री महाप्रभु की ही देन है। फिर हमारा क्या है, जो हम 'अहंकार' कर रहे हैं, उस कार्य का श्रेय ले रहे हैं। यहाँ सब कुछ सर्वथा श्री महाप्रभु की शक्ति से ही तो सम्पन्न हो रहा है। पर हम अहंकार से विमूढ होकर अपने को मान बैठते हैं उन सबका कर्ता। इसका परिणाम क्या होगा ? हमारे इस अहंकार रूपी मलिन यंत्र के द्वारा, प्रभु की पवित्रतम शक्ति का दुरुपयोग हुये बिना रह नहीं सकता। प्रभु की शक्ति का सदुपयोग तो केवल वहाँ सम्भव है-जहाँ यह अहंकार सर्वथा मिट गया होता है, प्रभु की शक्ति सीधे उतरती होती है, अथवा जहाँ यह अहंकार सर्वथा परिशुद्ध होकर प्रभु के पाद-पद्मों से लिपट जाता है, मन-बुद्धि-इन्द्रियों में प्रभु की संचारित की हुई शक्ति को वहीं से देखता रहता है देख-देखकर उत्फुल्ल होता रहता है, कभी भूलकर भी हस्तक्षेप करने नहीं आता। सारांश यह है कि हमारा अहंकार पहले तो महाप्रभु की शक्ति पर से उनका नाम पोंछकर अपनी मुहर लगा देता है और फिर उस शक्ति का अपव्यय करता है। अब जगन्नियन्ता की शक्ति चुराकर उसका अपव्यय करने का परिणाम दुःख की सृष्टि के अतिरिक्त और हो ही क्या सकता है ? उपरोक्त कारणों में ही हमारे दुःख के प्रायःसभी कारण समा जाते हैं। ये कारण एक-दूसरे से भिन्न सर्वथा स्वतंत्र हों ऐसी बात नहीं है। एक दूसरे से मिले-जुले होते हैं, परस्पर रूपान्तरित होते रहते हैं। समझने के लिए इन्हें विभागों में बाँट कर हम अच्छी तरह समझ सकते हैं। वास्तविक दृष्टि से विचारने पर तो दुःख नाम की कोई वस्तु नहीं है। फिर भी, जब तक हम श्री प्रभु जी में स्थित नहीं हो जाते, तब तक दुःख की सत्ता का भ्रम बना ही रहता है। उनमें व्यवस्थित हुए कि दुःख का अत्यन्त अभाव हो जाता है। सूर्य को कभी अन्धकार की सत्ता का भान है क्या ? जहाँ सूर्य है वहाँ अन्धकार न था, न है, न रहेगा। वैसे ही परमानन्द धन श्री महाप्रभु जी के समीप दुःख की सत्ता है ही नहीं। उनमें तन्मय होते ही हमारे लिए भी दुःख नहीं रहेगा। अभी तो हम उनसे अलग होकर उनसे मुँह फेरकर अपनी दृष्टि घुमा रहे है और इसीलिये-प्रभु के अतिरिक्त और कोई अस्तित्व न होने पर भी हम नाना पदार्थों के अनेक विषयों की जो अपेक्षा है, आशा है, बस, यही दुःख है। जिस दिन, जिस क्षण हमनें प्रभु को देख लिया उन्हें जान लिया, बस उसी क्षण यह विषय-सुख की अपेक्षा समाप्त हो जायेगी, दुःखों के समस्त कारण मिट जायेगें हमारे दुःखों का सदा के लिए अन्त हो जायेगा। विषय, नानात्व-ये भी नहीं रहेगें केवल एक प्रभु। (सत्संग सुधा)

(गतांक से आगे)

माताजी पर श्री गुरुदेव जी की महान कृपा

श्री गुरुदेव जी की कृपापात्रा श्रीमति सुशीला देवी

राजेश कुमार श्रीवास्तव (राजू) एत्मादपुर (आगरा)

जेलों के अन्दर घटित कुछ रोचक संस्मरण

एक बार एक कैदी बैरिकों के समीप बने शौचालयों में, जेल से भागने के उद्देश्य से, सुरक्षित स्थान पाकर उसमें छिप गया। शाम को सभी कैदियों की गिनती करने पर जब एक कैदी कम पाया गया तो समस्त जेल कर्मचारियों में खलबली मच गयी। सभी ने जेल का चप्पा-चप्पा छान मारा लेकिन कोई भी उस कैदी के समीप तक नहीं पहुंच सका। कुछ लोग शौचालयों तक तो पहुंच गये, किन्तु लापरवाह दृष्टि होने से उस कैदी के सुरक्षित स्थान को, जिसमें वह छिपा था, नहीं देख सके। बाबूजी (श्री डी. एस. सिसौदिया साहब) ने भ्रम दूर करनें के लिए कई बार कैदियों की गिनती करवायी किन्तु हर बार परिणाम असंतोषजनक ही रहा। अब तो बाबूजी को बहुत चिन्ता हो गयी। तभी एक व्यक्ति भागता हुआ माताजी के घर पर पहुंचा और हड़बड़ाता हुआ बोला, "माताजी, बाबूजी व समस्त स्टाफ बड़ी परेशानी में हैं। एक कैदी जेल से भाग गया है।" इस प्रकार की अप्रिय सुचना सुनकर माताजी का चिन्तित होना स्वाभाविक ही था। वो तुरन्त अपने पूजा के कमरे में गई और श्री महा प्रभुजी व श्री गुरुदेव जी के समक्ष आसान लगा कर ध्यान में बैठ गयीं। करीब पाँच मिनट के बाद, ध्यानावस्था में ही माताजी अपने परिवारिजनों से कहने लगीं,"वह कहीं नहीं गया है, शौचालय में छिपकर बैठा है। ध्यानपुर्वक देखो वहीं मिल जायेगा।" ऐसा ही किया गया। वह कैदी निर्दिष्ट स्थान पर ही पकड़ लिया गया। इसी प्रकार की एक और घटना इसी जेल पर घटित हुई। कैदियों के निरन्तर आवागमन से जेल एक लम्बे समय तक अपने अ.ि.त्व में बनी रहती है। जेलों का यही अपना गुणधर्म होता है इसी कारण प्रत्येक जेल पर नित्य कुछ कैदी मुक्त होते, कुछ नये प्रवेश पाते हैं। छुटने वाले तथा नये आने वाले कैदियों की संख्या को ध्यान में रखकर शाम को जेल बन्द करने से पहले समस्त कैदियों की गिनती करके उनकी यथार्थ संख्या ज्ञात करली जाती है। जेल की एक बैरिक में 51 कैदी थे एक कैदी के अदालत से छुटने पर अब उनकी संख्या 50 हो गई थी। गल्ती से सिपाहियों ने उस कैदी को 'अन्दर' दिखा दिया।यानि संख्या 50 के स्थान पर 51 ही रिकार्ड में चढ़ा दी गई। रिकार्ड में त्रुटि होने की सम्भावनाऐं प्रायः कम ही रहती है। अतः रिकार्ड के अनुसार ही कैदियों की गिनती की जाती है। सुबह जब गिनती की गई तो एक कैदी कम पाया गया। सभी को सौ प्रतिशत यह विश्वास हो गया कि कैदी बड़ी कुशलता से भागने में सफल हो गया है। अब क्या था, जैसा

हमेशा होता आया है प्रत्येक बैरिक के एक-एक कैदी की गिनती की गयी। लेकिन परिणाम में कोई सुधार नहीं प्राप्त हुआ। किसी जेल वार्डन ने माताजी को यह खबर देदी,"कि एक कैदी जेल से भाग गया है बाबूजी बहुत परेशान हो रहे हैं। माता जी तुरन्त अपने पूजा के कमरे में गई। जैसे ही उन्होंने अपना मस्तक गुरुदेव के चरणों में झुकाया तुरन्त उन्हें गुरुदेव की मधुर वाणी सुनाई पड़ी। देवी! कोई कैदी नहीं भागा है, रिकार्ड में त्रुटि है। बाबूजी के पास तक जब यह बात पहुँचाई गई तो उन्होंने रिकार्ड का ध्यान से अवलोकन किया। फिर सभी अदालतियों को बुला कर उनसे पूछा-क्या तुममें से कल कोई कैदी छोड़ा गया है? इस प्रश्न के उत्तर में वे सभी एक स्वर में कहने लगें हममें से एक कैदी कल अदालत पर छोड़ा गया है। इस प्रकार जेल कर्मियों से हुई भूल का गुरुदेव की कृपा से भेद खुल सका।

कैदियों के जेल से भागनें की श्रंखला में एक और घटना आगरा जिला जेल पर देखनें को मिली। घटना पुरानी है। इसे श्री गुरुदेव जी अपने सामने ही पुरानी पत्रिकाओं में प्रकाशित करा चुके हैं। जेल के पिछले हिस्से में कुछ पेड़ खड़े थे जिन्हें कटवाया जाना था। जेल कर्मचारी श्री साहिब सिंह को यह कार्य सौंपा गया था। साहिब सिंह जेल के अन्दर बने कारखाने से कुछ कैदियों को लेकर पेड़ों को कटवाने लगे। उन कैदियों में से एक जिसको जेल में लम्बी सजा काटनी थी, जेल से भागनें के लिए उचित अवसर की तलाश में था। पेड़ों के करीब पहुँचते-पहुँचते उसके दिमाग में एक युक्ति आ गई। पूरे मनोयोग से वह पेड़ कटवाने के कार्य में लग गया। जैसे ही सभी का ध्यान बँटा, वह मौका पाकर, जिस पेड़ पर चढ़ा हुआ था उसी के सहारे से ट्यूबबैल की छत पर पहुँच कर एक दीवार की आड़ में छुप गया। जेल का डंण्डा(बाउन्ड्री) उस समय सामान्य ऊँचाई का था अतः ट्यूब बैल के समीप ही बने जेल के डण्डे के शीर्ष स्थान पर पहुँचना उसके लिए सुविधाजनक हो गया था। कार्य समाप्त होने के बाद जब सभी कैदियों को वापिस ले जाया जाने लगा तो गिनती करनें पर उनमें एक कैदी की कमी पाई गई। पुनः गिनती की गई। सफलता न मिलने पर बार-बार गिनती की गई। लेकिन हर प्रकार से एक कैदी कम ही रहा। जरा सी देर में थोड़ी सी असावधानी सभी कर्मचारियों व अधिकारियों के लिए घोर चिन्ता का विषय बन गई। सभी को यह विश्वास हो गया कि कैदी जेल के डंण्डे से कूद कर भाग गया। अब तो एक प्रतिशत भी सम्भावना नहीं रह गई थी कि वह जेल के अन्दर ही होगा। बाबूजी ने उसी क्षण श्री गुरुदेव जी को स्मरण किया और पाँच रु. का प्रसाद श्री महाप्रभुजी के लिए चढ़ाने का संकल्प किया। इधर कुँवरपाल नाम का एक सिपाही जो माताजी की विलक्षण योगसाधना के विषय में शायद कुछ जानता रहा होगा वह तुरन्त दौड़कर माताजी के आवास पर पहुँचा और माताजी की बड़ी लड़की को समस्त बात बतलादी। उसका कहना था कि उस कैदी का मिलना बहुत मुश्किल है। सभी की नौकरी को खतरा है और बदनामी होगी सो अलग। बिल्कुल इसी प्रकार माताजी की बड़ी लड़की ने उन्हें उपरोक्त घटना के विषय में बतला दिया। इस समाचार को सुनकर माताजी को भारी घबराहट होने लगी। मन ही मन कहने लगी

गुरुदेव कैसी परीक्षा ले रहे हो? उन्होंने अपने हाथ मुँह धोये और महाप्रभुजी के ध्यान में बैठ गई। थोड़ी देर के उपरान्त ध्यानावस्था में ही उन्होंने अपनी बड़ी लड़की को आवाज लगाई। आँखे उनकी दोनों बन्द थीं। उन्होंने अपनी लड़की से कहा कैदी जेल के अन्दर ही है वह ट्यूववैल की दीवार की आड़ में छिपा है। मुझे स्पष्ट दीख रहा है। महाप्रभुजी बहुत देर से हमारी रक्षा कर रहे हैं। इस सूचना को लेकर जब कुँवर पाल बाबूजी के पास पहुँचा तो वो बात सुनकर, उस पर बुरी तरह बरस पड़े। हमारा तो यहाँ दिमाग खराब हो रहा है। वो वहीं से बैठे -बैठे आदेश भेजती रहती हैं। फिर उससे झल्ला कर बोले- अब यहाँ खड़े-खड़े क्या कर रहे हो। जाओ तुम भी ट्यूववैल के पास जाकर देख लो शायद तुम्हें मिल जाय, हमने तो सब जगह दिखवा लिया है। बाबूजी का आदेश पाकर, कुँवरपाल दो-तीन लोगों को और अपने साथ लेकर उक्त स्थान पर पहुँचा। थोड़ी ही देर में वह कैदी उनकी दृष्टि में आ गया। तुरन्त उसे नीचे उतरवाया गया तथा सारे मिल कर बाबूजी के पास तक घसीट कर ले गये। जेल में कैदी के मिलजाने की खबर आग की तरह फैल गई। कुछ जेल के कर्मचारी उसे मारने पीटने लगे, लेकिन दयालु स्वभाव होने के कारण बाबूजी ने ऐसा करने से सभी को रोक दिया और उसे कोई हानि नहीं पहुँचने दी। बाबूजी उसे अपने आफिस में ले गये और स्नेहपूर्वक उससे कहने लगे,"तुम मिल गये ये तो हम सभी के लिए अच्छी बात हो गई किन्तु एक बात समझ में नहीं आती है कि ट्यूववैल की दीवार का सहारा लेकर तुम बड़ी आसानी से जेल की बाउन्ड्री पर चढ़ सकते थे और पीछे कूद कर भाग भी सकते थे। समय भी तुम्हारे पास पर्याप्त था फिर तुमने ऐसा क्यों नहीं किया? भयभीत कैदी दोनों हाथ जोड़ता हुआ कम्पित स्वर में गिड़गिड़ाता हुआ बोला "बाबूजी मैंने कई बार जेल की बाउन्ड्री पर चढ़ने का प्रयास किया, किन्तु एक लम्बी दाढ़ी वाले जटाजूट धारी बाबाजी मुझे अपने त्रिशूल से नीचे धकेल देते थे। उस कैदी की बात सुनकर उपस्थित लोग दंग रह गये। इस प्रकार हमारे दादा गुरुदेव आनन्दकन्द महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज ने महाराज की जान जोखिम में पड़ने से बचाई।

ट्राँसफर सम्बन्धी बाधाओं से मुक्ति

एक दिन माताजी ने आरती पूजनोपरान्त श्री प्रभुजी से प्रार्थना की। हे प्रभुजी, अबकी बार इनका ट्राँसफर किसी ऐसे स्थान पर हो जाय जहाँ तीर्थ स्थान हो, गंगाजी का स्नान करने को मिले। कुछ दिनों के बाद बाबूजी का तबादला नैनीजेल के लिए हो गया। नैनीजेल संगम के त्रिवेणी के नजदीक ही है। नैनी की जेल पर बाबूजी ने ज्वाइन कर लिया। जेल काफी बड़ी थी, बड़ा स्टाफ था, काम भी अत्याधिक था। बाबूजी ने अपने कार्यभार को बड़े सुव्यवस्थित ढंग से संभाल लिया लेकिन एक पल के लिए भी उन्हें फुरसत नहीं मिलती थी। धीरे-धीरे बाबूजी बड़ी परेशानी महसूस करने लगे। एक रोज माताजी से कहने लगे—तुमने अच्छी गुरुजी से तीर्थ स्थान की जेल माँगी। यहाँ हमारी तो नाक में दम आ गई है। अब गुरुजी से ऐसी प्रार्थना करो यहाँ से हमारा ट्राँसफर कहीं अन्य जेल के लिए हो जाय हम तो यहाँ बहुत परेशान हैं। माताजी ने कहा ठीक है, पहले हमें एक दिन त्रिवेणी संगम में स्नान

करा लाओ। माताजी की बात मानकर बाबूजी अपनी बड़ी लड़की के साथ उन्हें एक ताँगे में बिठाकर संगम तट पर ले आये। तुरन्त ही एक नाव वाला भी मिल गया उसने सभी को अपनी नाव में बिठा लिया। संगम में जल का अभाव था कीचड़ युक्त जल काफी मात्रा में नजर आ रहा था। अतः बाबूजी तथा उनकी बड़ी लड़की का स्नान करने का मन नहीं बन सका। किन्तु माताजी बड़ी श्रद्धा से काफी देर तक संगम में स्नान करती रहीं। एक मरी हुई गाय तैरती हुई आयी और माताजी को स्पर्श करती हुई निकल गई लेकिन वो स्नान में इतनी आनन्दमय थीं कि उन्हें उसका जरा भी आभास नहीं हुआ। संगम में स्नान करते समय ही माताजी ने मन ही मन बाबूजी के ट्रॉसफर के लिए प्रार्थना की। माताजी को वर्षों से पिथ्थी की बीमारी थी। इस स्नान के बाद वह बीमारी उनकी जड़ से समाप्त हो गई। घर पहुँचने पर उसी रात को दो बजे वायरलेस से सूचना प्राप्त हुई कि श्री सिसोदिया साहब का ट्रॉसफर फैजाबाद की जेल के लिए कर दिया गया है। बाबूजी को बेहद खुशी हुई। बाद में कुछ वरिष्ठ अधिकारियों ने उनके ट्रॉसफर को लेकर कुछ अड़चनें पैदा कीं। किन्तु गुरुदेव की कृपा के आगे किसी की एक न चल सकी और अन्ततः उन्होंने फैजाबाद की जेल पहुँच कर ज्वाइन कर लिया। कुछ वर्ष वहाँ शान्ति पूर्वक कटे। अब बड़ी लड़की की शादी करने के कारण, सुविधा की दृष्टि से, आगरा की जेल पर अपना ट्रॉसफर चाहते थे। इस कार्य हेतु बाबूजी ने अपना प्रार्थना पत्र प्रस्तुत कर दिया था। उन्हें पूरी उम्मीद थी कि हमारा ट्रॉसफर आगरा जिला जेल के लिए हो जायेगा। तभी किसी व्यक्ति से उन्हें सूचना मिली कि जेलमंत्री के द्वारा आपका ट्रॉसफर तो बरेली के लिए किया जा रहा है। इस बात को लेकर परिवार में सभी को बहुत चिन्ता हो गई। उसी दिन शाम को आरती पूजन के उपरान्त माताजी को श्री गुरुदेव जी की करुणामयी वाणी सुनाई पड़ी, लल्ला का ट्रॉसफर आगरा ही होगा मंत्री जी की तो ऐसी की तैसी । श्री गुरुदेव जी की इस घोषणा से बाबूजी को बड़ी राहत मिली। फिर भी उन्होंने सोचा कि क्यों न जेल मंत्री जी से जाकर स्वयं मिल लिया जाय। उस समय जेल मंत्री श्री कृष्ण गोयल जी थे। उस समय से करीब 20 वर्ष पूर्व श्री सिसोदिया साहब जी के जेलमंत्री जी से अच्छे सम्पर्क रहे थे। एक सहयोगी को लेकर वे मंत्रीजी से उनके आवास पर मिलने पहुँचे। मंत्रीजी ने पूछा आपकी तारीफ? बाबूजी अपने सहयोगी से कहने लगे अब ये मंत्रीजी हो गयें हैं हमें क्यों पहचानेंगे। अब इन्हें हमारी तारीफ चाहिये। हम अब यहाँ नहीं रुकेंगें एक मिनट भी। बाबूजी जब लौटने लगे तो मंत्रीजी ने आग्रह करके रोक लिया और परिचय लिया। जब बाबूजी ने कहा मुझे सिसोदिया कहते हैं तो वे तुरन्त पहचान गये और भूल के लिए क्षमा माँगने लगे। बाबूजी ने अपने आने का कारण प्रस्तुत कर दिया। पूर्व परिचय का अवलम्बन लेने के बाद भी मंत्री जी ने साफ-साफ इंकार कर दिया। कहने लगे मैं तो आपको बरेली की जेल भेज रहा हूँ। आगरा जेल का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता। बाद में बाबूजी की बात से सहमत हो गये और ट्रॉसफर आगरा कराने का आश्वासन भी दे दिया। जैसे-तैसे बात बनी लेकिन फिर एक व्यवधान उत्पन्न हो गया। आगरा की सेन्ट्रल जेल पर कोई सक्सेना

करके थे। वे जिला जेल आगरा बाबूजी के स्थान पर स्वयं को लाना चाहते थे। इसके लिए उन्होंनें लखनऊ से अपनी पहुँच लगाई इसके अतिरिक्त मंत्रीजी का सेक्रेटरी सक्सेना जी का परिचित था वह भी पूरा-पूरा सहयोग दे रहा था। जब काफी दिन तक तबादले की सुचना नहीं मिली तो बाबूजी पुनः गुरुदेव का ध्यान करके जेलमंत्री के पास गये। कहने लगे,"आपकी बात को लोग बस इतना ही महत्व देते हैं ? हमारा तबादला तो अभी तक नहीं हुआ, मंत्री जी होकर क्या आदेश है आपका। जेलमंत्री जी ने बाबूजी के सामने ही तुरन्त आई. जी. दफ्तर, लखनऊ को फोन किया और कसकर फटकार लगाई अभी तक श्री सिसोदिया जी का ट्रॉसफर क्यों नहीं किया है ? दूसरी तरफ से उत्तर मिला शीघ्र ही कर दिया जायेगा। चार दिन बाद पुनः मंत्री जी ने फोन करके सही स्थिति की जानकारी ली। ट्रॉसफर से सम्बन्धी जब भी कोई कार्यवाही होती तो उनका सेक्रेट्री सक्सेना साहब की फाइल को उनके सम्मुख रख देता। एक रोज वो फाइल उठाकर मंत्री जी ने, सेक्रेटरी जी के मुँह पर दे मारी और डाँटते हुए कहा आयन्दा इसे मेरे सामने मत लाना। वह मंत्री जी से कहने लगा–साहब सक्सेना साहब न अपने कार्य में काफी रुचि लेकर कई हजार रुपये की बचत दिखलाई है और वे आगरा जिला जेलपर कुछ रुपयों की बचत दिखानें का वायदा भी कर रहें हैं। बस इसी लिये मैं उनके पक्ष में हूं। मंत्रीजी ने कहा कुछ नहीं जहाँ रोज लाखों रुपये जेल के खर्चों पर व्यय हो रहें हैं वहाँ उन थोड़े से रुपयों की बचत से क्या होता है। इस प्रकार परम गुरुदेव की कृपा से बाबूजी को आगरा की जेल मिल कर ही रही। मंत्री जी पर तो गुरुदेव ने ऐसा जादू कर दिया था कि जब तक वे अपने मंत्री पद पर रहे श्री सिसोदिया साहब जी के लिए हर प्रकार का सहयोग करने के लिए सदैव तैयार रहते थे। एक जेल के डी. आई. जी. ने बाबूजी से कहा क्या बात है मंत्री जी आपका बहुत पक्ष लेते हैं। क्या कुछ ले देकर आये हो मंत्री जी को ? बाबूजी बोले चलो मेरे साथ मंत्री के पास मैं उनको बोल दुंगा कि इनका कहना है कि मैने आपको मोटी रकम पिलाई है। वहीं बात स्पष्ट हो जायेगी। वो महाशय एकदम घबरा गये और बोले अरे आप तो मुझे मरवा ही डालोगे। मैं तो मजाक कर रहा था और फिर वह हँसने लगे प्रतिक्रिया में बाबूजी भी जोर का ठहाका लगा देर तक हँसते रहे। फिर बोले ये सब मेरे महान गुरुदेव की करुणकृपा का फल है।

जब भगवान भक्त के वश में होते हैं

हरि प्रेम की अद्‌भुत महिमा है। प्रेम जहाँ सच्चा अर्थात् निस्वार्थ होता है भगवान वहाँ अपनी मर्यादा, नियमों का कोई बन्धन नहीं रखते आवश्यकता पड़ने पर वे अपने भक्तों के प्रेम के वशीभूत होकर अपने समस्त नियमों - सिद्धान्तों का उल्लंघन करते हैं।

पौराणिक कथाओं मे ऐसे अनेकों उदाहरण देखनें में आते हैं। शबरी के प्रबल प्रेम के कारण मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम को उनको झुठे बेर खाते देखा गया। भगवान श्री कृष्ण चन्द्र जी जो समस्त त्रिलोकों को अपने इशारे पर नचाते हैं वे स्वयं गोपियों के इशारे पर नाचते देखे गये। बचपन के सखा श्रीदामा के लिए तो प्रेम में इतने अधीर हो गये कि उन्हें त्रिलोक ही सौंपने का मन बना लिया और

स्वयं उन्हीं की तरह दरिद्र बनने के लिये तैयार हो गये। यो तो अच्छा हुआ जो रुकमणी जी ने भगवान का हाथ पकड़ लिया और कहा अपने लिये भी कुछ छोड़ोगे अथवा नहीं। अपनी एक अंगुली पर गोवरधन पर्वत उठाने वाले योगेश्वर, नटवर नागर अपने प्रिय भक्त अर्जुन के हितार्थ उसके सारथी बनते फिरे। स्वयं नारायण ने अपने आप को, युद्ध स्थल पर नीचे अर्जुन के चरणों के समीप स्थान दिया और उसे धर्म की सुरक्षा हेतु युद्ध की प्रेरणा देकर अपने से ऊपर सम्मान जनक स्थान दिया। अब और इससे भी ज्यादा बड़ी बात क्या होगी। राधा के लिए तो कहा जाता है-

राधा तू बड़भागनी कौन तपस्या कीन्ह।
तीन लोक तारण तरण सो तेरे आधीन।।

भगवान शंकर ने मानव हित के लिए हलाहल विष को अपने कण्ठ में उतार लिया। मलायादेवी नाम की एक महिला महाप्रभुजी श्री रामलाल जी महाराज के दर्शन के लिए प्रतिदिन नियम से आया करती थीं उन्हें श्री महाप्रभुजी के चरणों में बेहद अनुराग था। मृत्यु होने पर वह कारण शरीर से बड़ी उदास महाप्रभुजी के समीप खड़ी हो गई। महाप्रभुजी कहने लगे तूने मेरे दर्शन करने के अतिरिक्त कुछ भी नहीं किया अब मैं तुझे क्या दूँ। ये सब लीला महाप्रभुजी के अति लाड़ले शिष्य श्री मुलखराज जी बड़े ध्यान से देख रहे थे। जब महाप्रभुजी ने उन्हीं से पूछा तो वह कहने लगे-अरे प्रभुजी, आपकी बच्ची है आप तो अनन्त दया के सागर हैं आपके सिवा इसका है भी कौन? मेरी प्रार्थना है आप इसकी सद्गति कर दें। महाप्रभुजी ने अपने प्रिय बालक श्री मुलखराज जी महाराज की प्रार्थना को टाला नहीं और तुरन्त मलाया देवी को आकाश मार्ग से आते हुए एक दिव्य सिंहासन में बैठाकर उन्हें दिव्याम्बर धरा चतुर्भुजा देवी बना दिया। अपने प्रिय भक्तों के प्रबल आग्रह पर भगवान क्या कुछ नहीं कर देते। कुपात्रों को भी पात्रता प्रदान कर देते हैं। इसीलिए भक्त बड़े सामर्थ्यवान समझे गये हैं जो भी ईश्वर का सच्चा भक्त हुआ उसका नाम दुनियां में अमर हो गया। भक्त और भगवान के मध्य बड़ा ही अटूट सम्बन्ध होता है। अपने भक्तों का मान बढ़ाने के लिए भगवान स्वयं कहते हैं" जो पतित से पतित जन भी मेरे अनन्य भक्त में श्रद्धा रखते हैं उनकी सेवा करते हैं मैं उनका भी कल्याण कर दिया करता हूँ।"

बुलन्दशहर की जेल पर 10 दिनों का प्रोग्राम श्री सिसोदिया जी ने अपने आवास पर कराया। बड़े धूमधाम से गुरुदेव का योगप्रचार कार्यक्रम चला। उन्हीं दिनों एक सज्जन पुरुष जो ब्राह्मण जाति के थे अक्सर श्री सिसोदिया जी से मिलने के लिए आया करते थे। वे तो बड़े शील स्वभाव के थे; किन्तु उनके लड़के का आचरण अच्छा नहीं था। वह बहुत उद्दण्ड प्रकृति का नवयुवक था। उस युवक को 'शिव्वन' के नाम से पूरा बुलन्दशहर जानता था। सन् 75-76 के आसपास इस युवक ने बड़ा आतंक मचा रखा था। बुलन्दशहर जनपद के बच्चों से लेकर बूढ़े सभी शिव्वन के नाम व कारनामों से परिचित थे। शिव्वन एक भला आदमी भी था असहाय लोगों की सहायता भी कर दिया करता था। पुराने लोग बुलन्दशहर के, आज भी जानते हैं पूरा शहर इसके नाम से भय मानता था। किसी के भी घर में निर्भीकता से घुस जाता था। किसी

की भी दुकान से कुछ भी उठा लेना, सरकारी कार्यालयों व शैक्षिक संस्थाओं में अपनी दादागिरी के बल पर प्रवेश करना तथा उन्हें डरा धमकाकर अपने सहयोगियों के तथा अपने कार्य करा लिया करता था। वह आपराधिक मामलों के अन्तर्गत कई बार जेल गया लेकिन अपनी पहुँच के आधार पर और अपने खिलाफ कोई गवाह न मिलने के कारण हर बार शीघ्र ही छूट जाया करता था। एक घटना का तो मैं स्वयं दृष्टा हूँ। उन दिनों मेरे पिताजी भी जेल पुलिस में होने के कारण बुलन्दशहर में ही जेल क्वाटर्स में सपरिवार रह रहे थे। मेरी अवस्था तब तक 7-8 वर्ष की रही होगी। मुझे कुछ-कुछ ध्यान है। एक रोज शिव्वन हमारी कालोनी में आया और एक जेल कर्मचारी की युवा लड़की को जबरदस्ती अपने साथ, सभी के सामने, गाड़ी मे बिठा कर ले गया। किसी की हिम्मत नहीं हुई जो उसे रोक लेता। दूसरे दिन वह लड़की स्वयं अपने घर वापिस आ गई थी।

परम् परमेश्वर श्री गुरुदेव भगवान के योग प्रचार के दिनों में शिव्वन जेल में अपनी सजा काट रहा था। जेल में चार-पाँच महीने का समय हो गया था उसे। इस बार किसी घोर अपराध के मामले में लम्बी सजा हुई थी। उसके पिताजी ने उसे जेल से छुड़ाने की बहुत कोशिश की लेकिन कोई सफलता नहीं मिली। शिव्वन के पिताजी श्री सिसोदिया जी से गहरा प्रेम मानते थे उनसे हमेशा अपने लड़के का ही दुःख रोते रहते थे। वे भी उसकी उद्दण्डताओं से तंग आ गये थे। उन्होंने श्री गुरुदेव के योग प्रचार कार्यक्रम में अपनी गाड़ी तथा बग्गी बाबूजी को सौंप दी थी। इसके अतिरिक्त उनसे जो भी सहयोग बन पड़ा उन्होंने किया। प्रोग्राम में वे दोनों वक्त सम्मिलित होते थे। वो श्री सिसोदिया जी के पीछे पड़े थे कि आप हमारे लड़के के विषय में अपने गुरुदेव से प्रार्थना कर दीजिए कि वह शीघ्र जेल से छूट जाय। वह जेल में बहुत दुःखी है। पहले तो बाबूजी टालमटोल करते रहे लेकिन एक दिन शिव्वन के पिता द्वारा विशेष आग्रह करने पर उन्होंने शाम के कार्यक्रम के उपरान्त गुरुदेव के श्री चरणों में निवेदन किया–प्रभुजी, ये मेरे मित्र हैं। इनका लडका जेल में है, लम्बी सजा हुई है उसे आप की कृपा हो जाय तो शीघ्र ही जेल से मुक्त हो जाय।

हमारे महान करुणनिधि गुरुदेव कुछ शून्य में घूरने लगे। भक्त का आग्रह था उसे टालते भी कैसे। गुरुदेव बोले अच्छा लल्ला,अच्छी बात तुम इनके लड़के को हमारे पास लाओ।आज्ञा पाकर श्री सिसोदिया साहब जी ने रात्रि में 10 बजे के बाद जेल पुलिस बल की सुरक्षा में उसे बाहर निकाला। ऊपर से आदेश प्राप्त हुये बिना किसी अपराधी को जेल से बाहर निकालने में जेल के नियमों की मर्यादा का उल्लंघन होता है लेकिन क्या करें गुरुदेव का आदेश ही ऐसा था। शिव्वन ने गुरुदेव के चरण स्पर्श किये। गुरुदेव ने उसे अपने समीप ही बैठा लिया। गुरुदेव ने उससे बड़े प्यार और मधुरता से जेल जाने का कारण पूछा। उसने गुरुदेव को सब कुछ सत्य -सत्य बता दिया और अपने अपराधों के लिए क्षमा मांगी। गुरुदेव जी ने कहा, लल्ला तुम जेल से अवश्य ही छूट जाओगे। किन्तु पहले हमें वचन दो कि आज के बाद कभी भी ऐसे कुकृत्य नहीं करोगे और पुरुषार्थमय सदाचारी जीवन व्यतीत करोगे। शिव्वन ने तुरन्त श्री प्रभुजी की बात को स्वीकार कर

लिया। शिव्वन को वापिस जेल में भेजने के बाद श्री गुरुदेव भगवान को 105 डिग्री बुखार हो गया। शिव्वन के क्लिष्ट संस्कारों को गुरुदेव ने स्वयं अपने ऊपर भोग लिया था। गुरुदेव सारी रात ज्वर पीड़ासे करहाते रहे। यह दृश्य देखकर बाबुजी व माताजी बहुत दुःखी हुए। बाबूजी तो श्री प्रभुजी के चरणों में अपना सिर रखकर रोने लगे। कहने लगे मुझे ऐसा मालुम होता प्रभुजी, तो उसे आपके पास तक नहीं आने देता। श्री प्रभुजी भगवान कहने लगे कोई बात नहीं लल्ला, तुमने तो अपनी मित्रता का फर्ज पूरा किया है। तुम्हारा इसमें कोई दोष नहीं है। बाबूजी ने गुरुदेव से डाक्टर लाने के लिए अनेकों बार निवेदन किया लेकिन प्रभुजी बारम्बार टालते रहे। प्रभुजी कहने लगे, डाक्टर कुछ नहीं कर सकेगा मेरा, मुझे सुबह तक स्वतः ही लाभ हो जायेगा। सुबह प्रातः गुरुदेव की ज्वर पीड़ा समाप्त हो गयी। प्रोग्राम के समय तक वे एकदम स्वस्थ हो गये। लगता था जैसे रात को कुछ हुआ ही नहीं था।

दया निधान श्री गुरुदेव भगवान की ऐसी कृपा हुई कि एक महीने के बाद शिव्वन के जेल से छूटने के आदेश हो गये। गुरुदेव ने तो अपना कार्य समाप्त कर दिया था किन्तु शिव्वन ने गुरुदेव के दिये वचन को कितना निभाया इस विषय में मैं कुछ नहीं कह सकता। वैसे मुझे इतना ज्ञात है कि शिव्वन अब इस दुनिया मे नहीं है। कुछ वर्षो पूर्व उसके सर ?गियो ने उसकी हत्या कर दी शायद इसलिये क्योंकि वह सुधर कर उनसे पीछा छुड़ाना चाहता था।

पद्मा के पति पर कृपा

पद्मा एक बहुत ही सुन्दर महिला का नाम है। उसका पति कत्ल के अपराध में जेल की सजा काट रहा था। उसे फाँसी की सजा के आदेश हो गये थे। पद्मा असहाय होने के कारण अपने पति को फाँसी की सजा से बचा पाने में असमर्थ थी। उसकी शादी के कुछ दिनों बाद में घटना घट गई थी, बेचारी बहुत दुःखी थी। अपने बल पर पति को बचाने का जितना प्रयास वह कर सकती थी उसने किया। लेकिन अन्त में निराश ही होना पड़ा। पद्मा को अपने पति से बेहद् प्रेम था। जैसे-जैसे फाँसी लगने के दिन नजदीक आते जा रहे थे उसकी चिन्ता बढ़ती जा रही थी। बाबुजी को उसकी दशा पर बहुत तरस आता था। बाबुजी ने सदैव उसके प्रति अपनी सहानुभूति व्यक्त की। हर प्रकार से उसकी मदद् करने के लिए तैयार रहते थे। वह अपने पति के लिए तरह-तरह के स्वादिष्ट भोजन भिजवाती थी। बाबुजी ने इस बात के लिए कोई रोक-टोक नहीं लगाई थी। वह रोज अपने पति से मिलाई करने जेल पर आती थी और 5-6 घण्टे लगातार अपने पति से बातें करती रहती थी। जेलों में कैदियों से मिलाई करने की भी एक निश्चित अवधि होती है इस अवधि से अधिक समय लेना केवल वरिष्ठ अधिकारियों की इच्छा पर ही निर्भर करता है। बाबुजी सोचते थे अब इसका पति कुछ दिनों के बाद इस दुनियाँ में रहेगा नहीं फिर इसको अपने पति से मिलने से भी वंचित क्यों रखा जाय? अतः उन्होने समय के लिए भी पद्मा पर कोई पाबन्दी नहीं लगायी थी। इस प्रकार बाबूजी की कृपा दृष्टि से वह जितनी देर चाहे अपने पति से बातें करती रहती थी। अब तक वह बहुत उदास रहने लगी थी। बाबुजी बतलाते हैं कि वह अपने नाम के अनुरूप ही बहुत सुन्दर थी

जब भी अपने पति से मिलने आती थी तो उसे देखने के लिए लोगों की भीड़ लग जाया करती थी। कोई व्यक्ति उसके साथ दुर्व्यवहार न करें इस कारण बाबूजी उसे अपने चैम्बर में बिठा लिया करते थे।

एक रोज इसे पता लग गया कि श्री सिसोदिया साहब जी के गुरुजी उनके घर पर आये हुऐ हैं वे बड़े ही दयालु महायोगीराज हैं और कुछ भी कर सकने में समर्थ हैं। गुरुदेव जाने की तैयारी में थे। घर के सभी सदस्य उनकी विदाई करने के लिए तैयार खड़े थे। तभी वह दुःखी पद्मा भागती हुई आयी और बाबूजी के पैरों पर गिर पड़ी कहने लगी आप अपने गुरुदेव से कह कर मेरे पति की रक्षा करा दीजिए। बड़ी कृपा होगी आपकी। बाबूजी तुरन्त पीछे हटते हुए उससे बोले अरी पगली, तू मेरे पैरों पर क्यों पड़ रही है भाग कर गुरुजी के पैर पकड़ले। बस वह दौड़कर अब श्री गुरुदेव के पावन श्री चरणों से लिपट गई और फूट-फूट कर रोने लगी। उसकी सच्ची वेदना थी वह अपने मुख से कुछ भी नहीं कह पा रही थी। गुरुजी उस समय अपनी कार में बैठने के लिए अपना पैर उठा ही रहे थे कि पद्मा ने अचानक उनके चरण पकड़ लिए थे। गुरुदेव एकदम से चौंक गये थे और श्री सिसोदिया साहब की तरफ अपनी दृष्टि डालते हुये बोले,"लल्ला ये सब क्या है?" बाबूजी तुरन्त गुरुदेव की तरफ आगे बढ़कर बोले," प्रभुजी, ये महिला बहुत कष्ट में है। इसके पति को फाँसी की सजा हो गई है।" गुरुदेव से कहने लगे, अच्छा ये बात है। हमने कह दिया तेरे पति को फाँसी नही होगी कोई कुछ भी करके देखले।" ऐसा सूक्ष्म सा उत्तर देते हुऐ प्रभुजी अपनी कार में बैठ गये। कार चल दी, पद्मा ठगी सी अपने स्थान पर खड़ी रह गयी। वह प्रभुजी की गाड़ी को एकटक तब तक निहारती रही जब तक कि गाड़ी उसकी दृष्टि से ओझल नही हो गई।

उसे अपने कानों पर विश्वास नहीं होता था। जो कुछ क्षणों पूर्व सुना है क्या वह सचमुच सच हो जायेगा? उसके बोझिल कदम धीरे-धीरे अपने घर की ओर बढ़ रहे थे। पागलों जैसी स्थिति हो गई थी उसकी। कभी वह अत्यन्त निराश हो जाती सोचती ये सब कैसे सम्भव हो सकेगा। कहीं गुरुदेव ने मेरा मन तो नहीं बहला दिया। मैं ठीक से अपनी पूर्ण व्यथा भी न कह सकी, कम से कम आधा घण्टे का समय तो मिला होता। फिर उसका शरीर उमंग से भर जाता जैसे ही उसे गुरुदेव के वे प्यारे वचन याद हो जाते थे। आह! कितना आनन्द कितना चैन मिलता था गुरुदेव के उन प्यारे वचनों को याद करके जिसमें उसके पति को जीवनदान की घोषणा थी।वह ईश्वर से रात दिन प्रार्थना करती काश! ये शब्द गुरुदेव के ज्यों के त्यों सत्य हो जायें। उस बेचारी को क्या पता था कि ये स्वयं नारायण के वचन हैं। वे अनन्त करुणा के सागर चलते-फिरते में ही अपने कार्य कर दिया करते हैं यही उनकी विशेषता होती है। उस दिन उसकी खुशी का ठिकाना नहीं रहा जिस दिन उसका पति (इस घटना के करीब डेढ़-दो माह बाद) फाँसी की सजा से मुक्त होकर घर वापिस लौट आया। आजकल पद्मा अपने पति के साथ बुलन्दशहर के समीप अनूपशहर में रह रही है उसका पति एक बड़े होटल का मालिक है और इज्जत की जिन्दगी जी रहा है। दोनों पति पत्नी आज भी श्री सिसोदिया जी का एहसान मानतें हैं, उनका बहुत सम्मान करतें हैं।

(क्रमशः)

जिव जबतें हरि बिलगान्यो

जिव जबतें हरितें बिलगान्यो। तबतें देह गेह निज जान्यो।
मायाबस स्वरूप बिसरायो। तेहि भ्रमतें दारुन दुःख पायो।

पायो जो दारुन दुसह दुःख, सुख-लेस सपनेहुँ नहिं मिल्यो।
भव-सूल, सोक अनेक जेहि, तेहि पंथ तू हठि हठि चल्यो॥

बहु जोनि जनम, जरा, बिपति, मतिमन्द! हरि जान्यो नहीं।
श्रीराम बिनु बिश्राम मूढ़! बिचारु लखि पायो कहीं॥

अर्थात्

हे जीव! जब से तू भगवान् से अलग हुआ, तभी से तूने शरीर को अपना घर मान लिया। माया के वश होकर तूने अपने 'सच्चिदानन्द स्वरूप को भुला दिया, और इसी भ्रम के कारण तुझे दुःख भोगने पड़े। तुझे बड़े ही कठिन (जन्म-मरण रूपी) असहनीय दुःख मिले। सुख का तो स्वप्न में भी लेश नहीं रहा। जिन मार्ग में अनेक संसारी कष्ट और शोक भरे पड़े हैं, तू उसी पर हठ-पूर्वक बार-बार चलता रहा। अनेक योनियों में भटका, बूढ़ा हुआ, विपत्तियाँ सहीं। (मर गया)। पर, अरे मूर्ख! तूने इतने पर भी श्री हरि को नहीं पहचाना। अरे मूढ़! विचार कर देख, श्रीराम जी को छोड़कर (किसी ने) क्या कहीं शान्ति प्राप्त की है।

— (विनय-पत्रिका से)

SIDDHAYOGA Regd. No. L. AG. 008 JUNE 1997

प्रेषण कार्यालय :—

सिद्धयोग

योग-सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग-प्रशिक्षण केन्द्र सवाई (एत्मादपुर) आगरा

PRINTED MATTER
Book Post

श्री

विचार की शक्ति

विचार की शक्ति की वे तरंगें जिनके साथ संकल्प शक्ति का प्रबल बल विद्यमान होता है, मनुष्य के मस्तिष्क से निकलकर रुकावट और विरोध के होते हुए भी उस लक्ष्य तक निरन्तर दौड़ती रहती हैं, जब तक उनको कोई ऐसा मन न मिल जाय, जो उस विचार के साथ सहानुभूति और अनुकूलता न रखता हो।

यदि आप घृणा, धिक्कार या शत्रुता मिश्रित विचार संकल्प-शक्ति के साथ किसी के पास भेजेंगे तो वे जीवित शक्ति बन जायेंगे और वे तब तक बराबर दौड़ते रहेंगे, जब तक कि वे उसके समीप तक न पहुँच जाएँ, जिसके लिए वे भेजे गये हैं। इसी प्रकार प्रेम और सद्भावनापूर्ण प्रत्येक विचार भी आपकी संकल्प-शक्ति का सहारा लेकर उस तक पहुँचकर ही दम लेता है, जिसके लिये वह प्रेरित किया गया है।

—योगी सियाराम

प्रकाशक एवं मुद्रक—बिनय गजानन शर्मा द्वारा कर्मयोग प्रिण्टिंग प्रेस, बसई कलाँ, ताजगंज, आगरा के लिये राष्ट्रीय ब्लाक एवं प्रिण्टिंग वर्क्स, जौहरी बाजार आगरा से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाई आगरा से प्रकाशित। फोन : 32326।